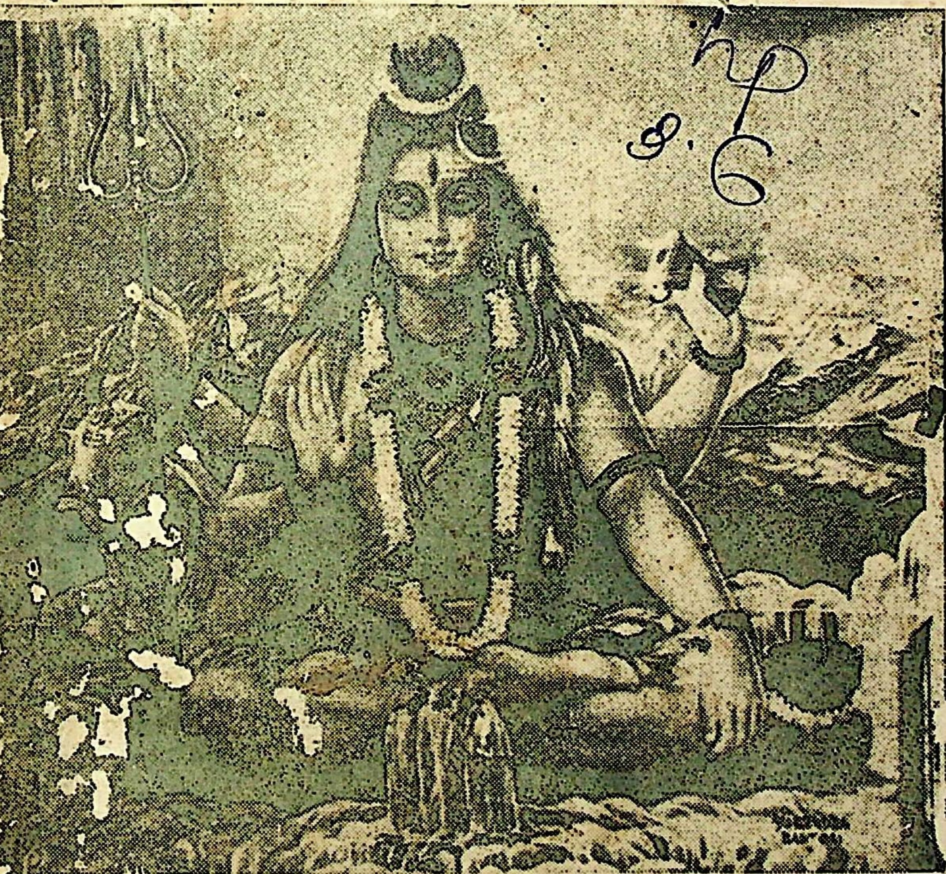
श्री

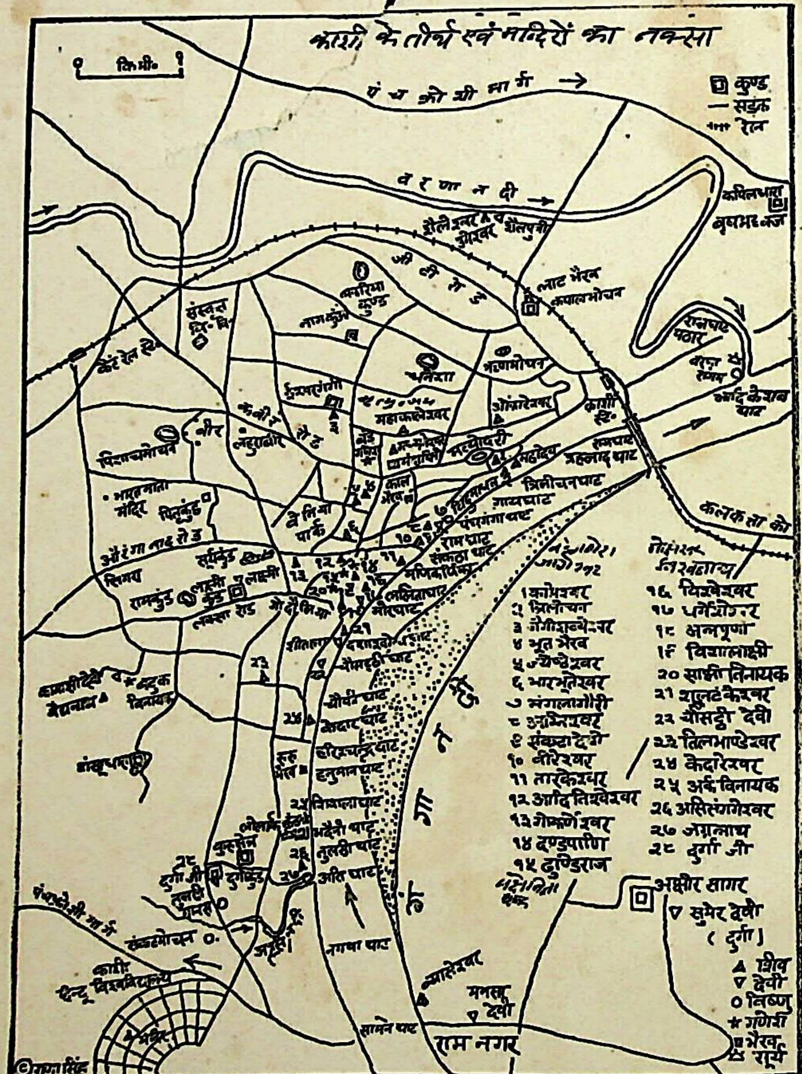
मोक्ष निर्णय

[प्रथम भाग]



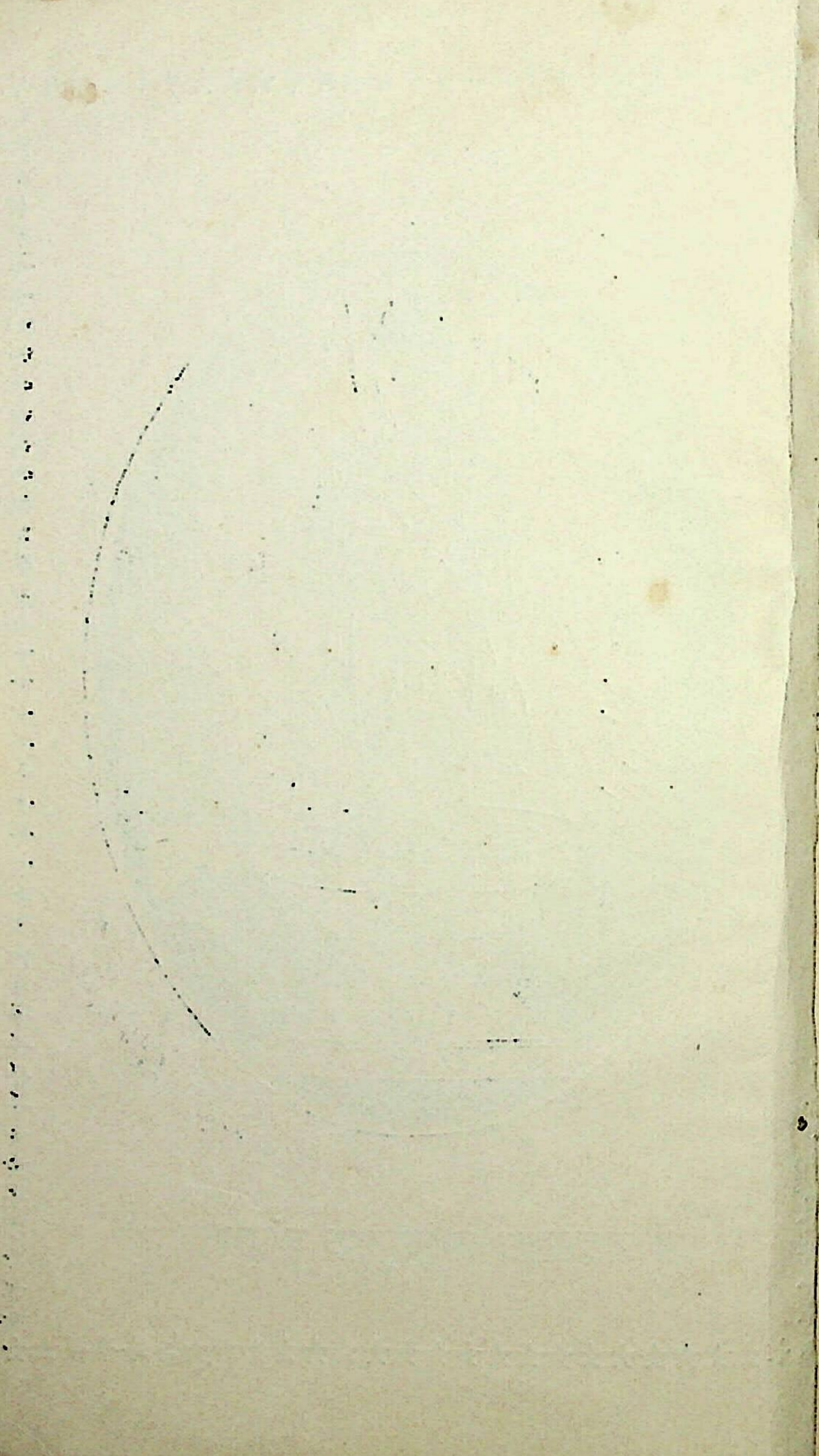
श्री काशी विश्वनाथजी

लेखक- स्वामी शिवानन्द 'सरस


काशी के तीर्थ एवं मन्दिरों का नक्सा
किमी॰
पं च को सी मा र्ग
कुण्ड
सड़क
रेल
व रु णा न दी
कपिलधारा
वृषभध्वज
लाट भैरव
कपालमोचन
महाकालेश्वर
ओंकारेश्वर
काशी स्टे॰
पिशाचमोचन
भारतमाता मंदिर
पितृकुंड
औरंगाबाद रोड
सूर्यकुंड
लक्ष्मी कुंड
रामकुंड
मणिकर्णिका
त्रिलोचनघाट
गायघाट
पंचगंगा घाट
राम घाट
संकठा घाट
ललिताघाट
मीरघाट
चौसट्ठी घाट
चौकी घाट
केदार घाट
हरिश्चन्द्र घाट
हनुमानघाट
शिवालाघाट
भदैनी घाट
तुलसी घाट
असि घाट
नगवा घाट
संकटमोचन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
राम नगर
सामने घाट
कलकत्ता को
१ ओंकारेश्वर
२ त्रिलोचन
३ गोपीगोविन्देश्वर
४ भूत भैरव
५ ज्येष्ठेश्वर
६ भारभूतेश्वर
७ मंगलागौरी
८ अग्नीश्वर
९ संकठा देवी
१० वीरेश्वर
११ तारकेश्वर
१२ आदि विश्वेश्वर
१३ गोकर्णेश्वर
१४ दण्डपाणि
१५ ढुण्ढिराज
१६ विश्वेश्वर
१७ धर्मेश्वर
१८ अन्नपूर्णा
१९ विशालाक्षी
२० साक्षी विनायक
२१ शूलटंकेश्वर
२२ चौसट्ठी देवी
२३ तिलभाण्डेश्वर
२४ केदारेश्वर
२५ अर्क विनायक
२६ असिसंगमेश्वर
२७ जगन्नाथ
२८ दुर्गा जी
अक्षीर सागर
सुमेर देवी
(दुर्गा)
शिव
देवी
विष्णु
गणेश
भैरव
सूर्य
© कृष्णा सिंह



श्री मद्आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य



काशी मोक्ष निर्णय

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

धर्मसंघ शिक्षा-मण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

प्रकाशक
स्वामी शिवानन्द सरस्वती
धर्मसंघ शिक्षा-मण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।

मूल्य १० रुपये

प्राप्ति स्थान—
करपात्रीधाम, केदारघाट, वाराणसी फ़ोन नं० २५७८०
मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी
फोन : ६२८९८
मास्टर खेलाड़ीलाल संकटा प्रसाद, कचौड़ी गली, वाराणसी
चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी
आदर्श विद्या निकेतन, अस्सी, वाराणसी

मुद्रकः— जगन्नाथ प्रिण्टर्स, भोगावीर, लंका, वाराणसी।

आत्म-निवेदन

अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज उपमन्यु गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने संस्कृत विद्याओं का अध्ययन किया, हिमालय की कन्दराओं में बैठ कर तपस्या करने के बाद हिन्दू संस्कृति के ह्रास को देखकर उद्विग्न हो उठे। इन्होंने देखा कि वेद से लेकर स्मृतियों और पुराणों पर भी विदेशियों का प्रहार चल रहा है, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी जैसे लोग विदेशियों के प्रहारों को रोकने में असमर्थ होकरकोई उपनिषदों को, किसीने मन्त्र भाग वेद संहिता को, किसी ने प्रणामी सम्प्रदाय की अंग्रेजी कुचक्रियों के प्रभाव में आकर उन्हें ही प्रमाणग्रन्थ माना और मानने लग गये। ब्राह्मणों तथा स्मृतियों का खण्डन करने लग गये तब स्वामी जी ने हिमालय की कन्दरा छोड़कर देशमें वैदिक संस्कृति के जागरण का प्रयत्न आरम्भ किया। संस्कृत और हिन्दी में दस हजार पृष्ठों से भी अधिक ग्रन्थ लिखा, देश की स्वतन्त्रता के बाद समाज सुधार के नाम पर वैदिक संस्कृति पर होने वाले प्रहारों का निराकरण किया और अन्तिम समय तक वे निर्भीकता से सरकार के प्रयासों का विरोध करते रहे। आज स्वामी जी अपने भौतिक देह से इस दुनिया में नहीं हैं फिर भी उनके लिखे ग्रन्थ हमें मार्ग प्रदर्शन करते रहेंगे। स्वामी जी का अन्तिम शिष्य होने के नाते मैं भी उनके बताये हुए मार्ग पर चल रहा हूँ। यदि मेरे इस प्रयास से कुछ भी लोकोपकार हुआ तो वह स्वामी जी महाराज की कृपा दृष्टि का फल होगा। इन शब्दों के साथ स्वामी जी महाराज के चरणों में विनयावनत हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है उन सबका कल्याण हो। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट के द्वारा भी सहयोग प्राप्त हुआ है।

स्वामी शिवानन्द सरस्वती
(ग्रन्थकार)

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरुशङ्कराचार्य द्वारका-शारदा पीठाधीश्वर प्रातःस्मरणीय स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज की शुभाशंसा

हमारे शास्त्रों में 'काशी-सेवन' को मोक्ष प्राप्ति का अप्रतिम साधन बताया गया है। भगवान काशी विश्वनाथ अपने शरण में आए व्यक्तियों को तारक मंत्र के उपदेश द्वारा पुनः गर्भ रन्ध्र के दर्शन का अवसर नहीं देते। भारतीय जीवन दर्शन का यह चतुर्थ लक्ष्य काशी में भगवान विश्वनाथ की कृपा से सभी व्यक्तियों को सहज से ही सुलभ हो जाता है।

स्वामी श्री शिवानन्द सरस्वती ने कई बार पंचक्रोशी तथा अन्तर्गृही यात्राओं को संपन्न किया है। काशी की महिमा के बारे में इन्हें शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों का अच्छा ज्ञान है। इस ज्ञान को इन्होंने अपनी पुस्तक काशी मोक्ष निर्णय में भली भाँति दर्शाया है।

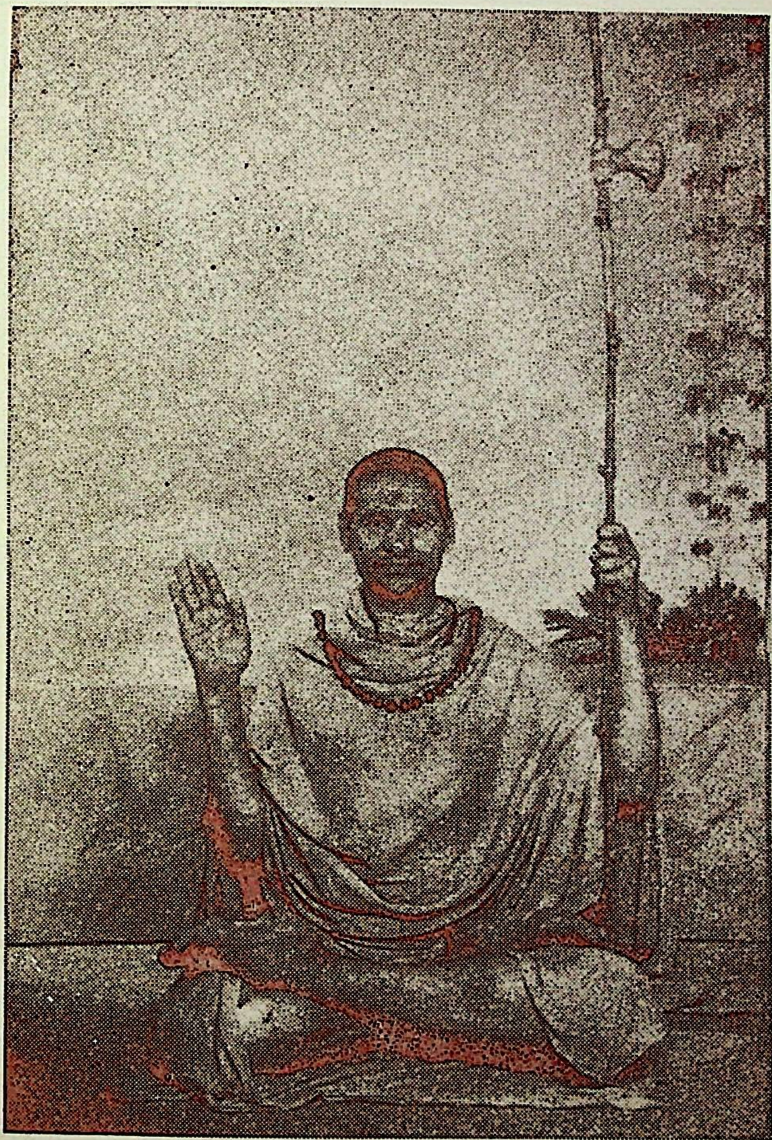
हमें पूरा विश्वास है कि काशी मोक्ष निर्णय' के मनन से आस्तिक जनता का पूर्ण कल्याण होगा। यह पुस्तक जन कल्याण का पूर्ण साधन बने भगवान ज्योतिरीश्वर तथा पूर्णाम्बा से हमारी यही प्रार्थना है।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

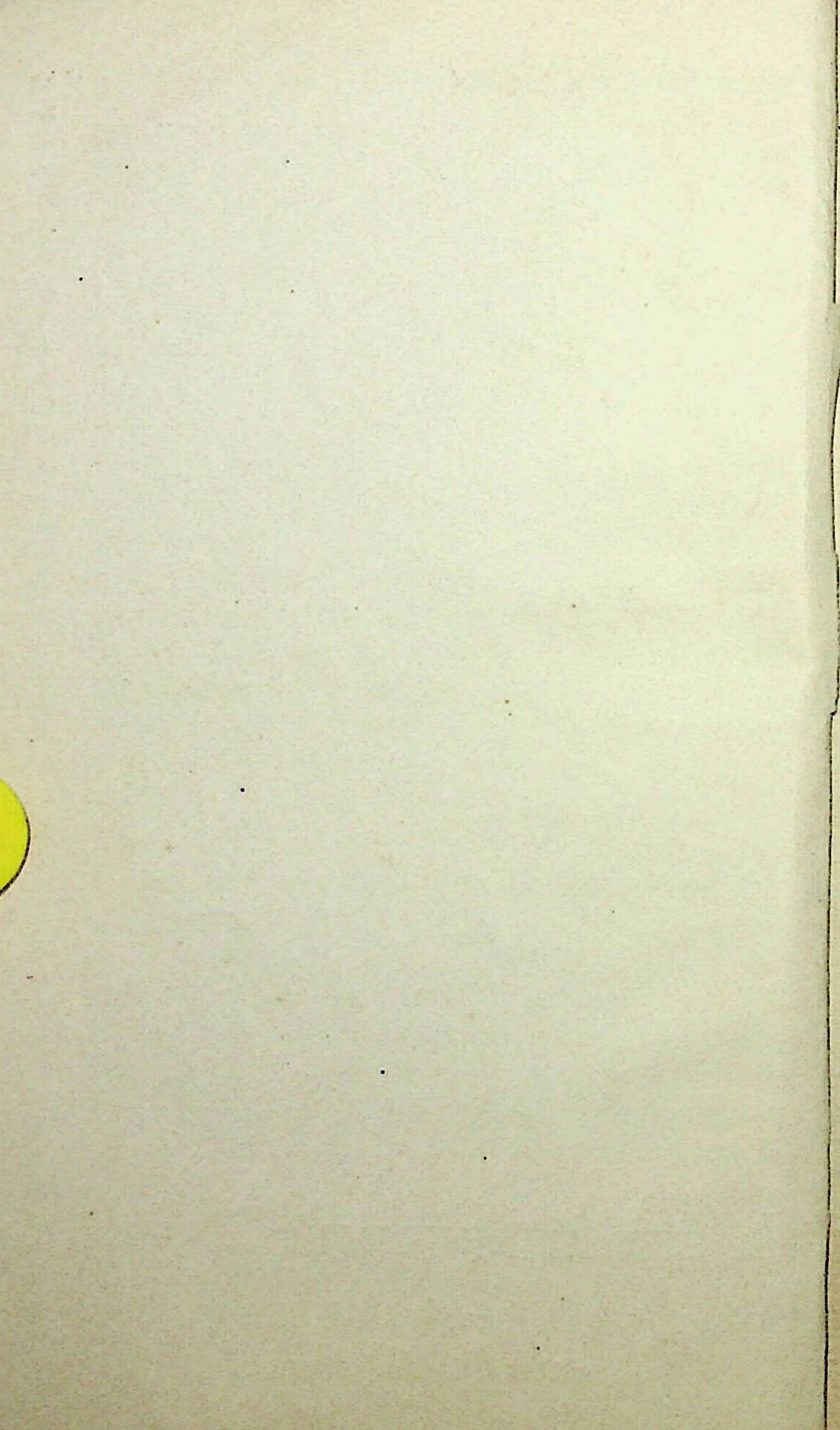


अनन्त श्री विभूषित धर्मसम्राट

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज



श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती [लेखक]



सम्मतियाँ

अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महराज के शिष्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी ने काशी मोक्ष निर्णय ग्रन्थ लिखकर सामान्य हिन्दी भाषा से परिचित लोगों के लिए भी काशी की अलौकिकता का परिचय दिया है, जहाँ भगवान शिव कीट-पतंग को भी संसार के बन्धन से मुक्ति देते हैं वह काशी भूमण्डल का स्वर्ग ही है, यहाँ तप करने वालों को मुक्ति से अतिरिक्त भगवान की प्रसन्नता का फल और क्या मिल सकता था। श्री स्वामी जी ने काशीखण्ड तथा अन्यत्र भी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर काशी का परिचय दिया और उसके मुक्तिदायिनी स्वरूप को उजागर किया इनका यह प्रयत्न स्तुत्य है। मैं विश्वास करता हूँ कि धार्मिक जन इसका अध्ययन करेंगे और मुक्ति के भागी बनेंगे।

स्वामी सदानन्द सरस्वती
करपात्र धाम, केदार घाट, वाराणसी

श्री स्वामी शिवानन्द जी की काशी मोक्ष निर्णय पुस्तक सरल हिन्दी भाषा में लिखी गयी है यद्यपि काशी मोक्ष दायिनी है यह प्राचीन काल से प्रसिद्ध है फिर भी किसी अल्पज्ञ के मन में उठते हुए संशय को दूर करने के लिए श्री स्वामी जी ने स्तुत्य प्रयास किया है। मैं इनके इस प्रयास की हृदय से सराहना करता हूँ और इस ग्रन्थ के प्रचार प्रसार में योगदान करने वाले लोगों को शुभाशीर्वाद देता हूँ।

लक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारी
धर्मसंघ शिक्षामण्ड, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती द्वारा संकलित "काशी मोक्ष निर्णय" देखने का अवसर मिला। महाराज जी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत ही परिश्रम किया है। महाराज श्री के परिश्रम के परिणाम स्वरूप यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ निकल गया। इस ग्रन्थ के अध्ययन से काशी के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हो जाएगी। काशी के महिमा ज्ञान से ही बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है। तीर्थ के महिमा की जानकारी तीर्थों में निष्ठा से होती है और वही निष्ठा एक दिन व्यक्ति को तीर्थ की प्राप्ति भी करा देती है। भूतभावन सदाशिव भगवान शंकर से प्रार्थना है कि इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार हो।

श्रीनाथ मिश्र
रामायणी

नम्र निवेदन

पूज्यपाद स्वामी शिवानन्द जी महाराज जिनकी कृपा मेरे ऊपर विशेष रहती है तथा मैं भी जिनकी थोड़ी सेवा करके अपने को कृत-कृत्य समझता हूँ। काशी मोक्ष निर्णय नामक पुस्तक को मैंने आद्योपान्त पढ़ा है। इस ग्रन्थ में वेद, वेदान्त, उपनिषद्, स्मृतियों के उद्धरण दिए गए हैं, जिनसे स्वामी जी का मन्तव्य पुष्ट एवं सिद्ध हुआ है। प्रायः श्लोकों या अन्य उद्धरणों का सरल, सुबोध हिन्दी अनुवाद भी श्री स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है जिससे सामान्य जन भी काशी के महत्व को समझ सकता है तथा अपने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष-पुरुषार्थों से अवगत हो सकता है। स्वामी जी का जन सामान्य के लोक कल्याण के लिये किया गया यह अध्यवसाय, स्पष्ट संकेत करता है कि विरक्त भी महात्मा, लोक कल्याण में आसक्त होते हैं। इस प्रकार आसक्त होते हुए भी अनासक्त स्वामी जी की प्रशंसा तो शब्दों से नहीं की जा सकती। अतः मैं उनके चरणों में नत मस्तक होकर, उन्हें चिरकाल तक जनता के हित में अपने उपदेशात्मक उद्गार व्यक्त करने के लिए भगवान काशी विश्वनाथ से प्रार्थी हूँ।

घनश्याम त्रिपाठी
श्री धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

श्री शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते,
चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
यद्गता न निवर्तन्ते,
पञ्चाक्षरमन्त्रचिन्तकाः॥

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय॥ १॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रथमनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' कार य नमः शिवाय॥ २॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥ ३॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य—
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय॥ ४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥ ५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः
पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति
शिवेन सह मोदते ।। ६ ।।

इति श्री मच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नमः शिवाय—(यह शिव जी का महामन्त्र है) इस मन्त्र का जप करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वतः प्राप्त होते हैं ।

शिव-शिव—(यह शकर जी के नाम जप का महामन्त्र हैं) निरन्तर जप करने वाले व्यक्ति को द्रव्य, सन्तान, भक्ति, विद्या और ज्ञान की वृद्धि होती है ।

हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथगङ्गे ।

यह शंकर जी के कीर्तन का महामन्त्र है । इस कीर्तन को करने वाला व्यक्ति चिरंजिवी, नीरोग और स्वस्थ रहता है । व्यक्ति के आवश्यकतानुसार सभी भोग्य प्रदार्थ प्राप्त होते हैं ।

काशी की महिमा

ब्रह्मैव तन्निर्गुणं निर्विकारं निरन्तरं क्षेत्ररूपेण नित्यम् ।
तिष्ठत्त्येवन्त्यम्बको यत्र नित्यं यद्वपुत्वात् सन्निहित एवास्ते ॥
विभूतिं स्वां दर्शयिष्यन् गिरीशः क्षेत्राकारं प्राप्य तीर्थाकृतिं च ॥

अर्थ—निर्विकार निर्गुण ब्रह्म निरन्तर क्षेत्र के रूप में स्थित हैं। काशी में त्र्यम्बक स्वयं शिवजी नित्य स्थित हैं। क्षेत्र रूप होने से भगवान् यहाँ अपनी विभूतियों को दिखाने की इच्छा से सन्निहित रहते हैं। गिरीश भगवान् शंकर क्षेत्राकार और तीर्थाकार दोनों के रूप में काशी में उपस्थित हैं।

विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थकामामृतरूपरूपः ।
स्वरूपः हि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसदृशी त्रिलोकी ॥

—काशी खण्ड अ. ३/९८.

अर्थ—विश्वनाथ (काशी में) अर्थ, काम और मोक्ष को देने के लिए मूर्तिमान होकर स्वयं विराजमान हैं। (काशी में मुक्ति लाभ) यह कौन आश्चर्य की बात है, क्योंकि वह विश्वनाथ अखण्ड सच्चिदानन्द साक्षात् विश्व रूप हैं। इसी से त्रैलोक्य भी काशी के समान नहीं है, और इसी से यह काशी सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है।

अविमुक्तं महत्क्षेत्रं पंचक्रोशपरिमितम् ।
ज्योतिर्लिंगं हि विज्ञेयं विश्वेश्वराभिधम् ॥

—काशी खण्ड २६/१३१.

अर्थ—पंचक्रोश परिमाण अविमुक्त (काशी) नामक जो महाक्षेत्र है, उसे एक ही विश्वेश्वर विश्वनाथ नामक ज्योतिर्लिंग जानना चाहिए और काशी पृथ्वी से अलग चैतन्य-रूप है। इससे प्रलय काल में भी यह नष्ट नहीं होती।

काशीवासिजनो देवि मम गर्भे वसेत्सदा।
अतस्तं मोचयाम्यन्ते प्रतिज्ञेयं यतो मम्॥

—काशी खण्ड अ. ३२/१३२.

अर्थ—काशीवासी जन सदा मेरे ही गर्भ में निवास करते हैं। अतएव मैं अन्तकाल के समय में उन काशीवासी जनों का (अज्ञान) उड़ा देता हूँ, क्योंकि यह मेरी प्रतिज्ञा है, इतना ही नहीं अपितु काशीवासियों के कल्याण के लिए अधिक परिश्रम करके मुक्ति दिलाता हूँ।

यत्तच्छिवानन्तमाद्यं यदावयोर्नित्यमभिन्नरूपम्।
दृश्यं समस्तोपनिषत्सु भक्तैर्जानीहि तेजस्तदहो विमुक्तम्॥

—सनकुमार-संहिता-७

अर्थ—श्री शंकर जी पार्वती जी से कहते हैं कि—हे प्रिये! जो शिव कल्याण रूप आनन्दमय, अनन्त, सब के आदि और उपनिषदों से जानने योग्य हैं और हम तुम दोनों का नित्य और अभिन्न रूप जो तेज है वही अविमुक्त (काशी) है ऐसा जानों।

छत्राकारन्तु किं ज्योतिर्जलादूर्ध्वं प्रकाशते।
निमग्नायां धरण्यान्तु न निमज्जति तत्कथम्॥

सदाशिवां महोदेवो लिंगरूपधरः प्रभुः ।
मया स्मृतो लोकगुह्यै प्रादेशपरिमाणतः ॥
लिंगरूपधरः शम्भुर्हृदयाद् बहिरागतः ।
वृद्धिमासाद्य महतीं पंचक्रोशात्मकोऽभवत् ॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण-काशी रहस्य

अर्थ—ऋषिगण जो अमर हैं वे प्रलय के समय में श्री सनातन महाविष्णु से पूछते हैं—हे भगवान् यह छत्र के आकार की ज्योति जल ऊपर क्या प्रकाशित है, जो प्रलयकाल में पृथ्वी के डूबने पर के भी नहीं डूबती इस पर तो विष्णु जी ने कहा—हे ऋषियों लिंग रूपधारी सदाशिव महादेव का हमने तीनों लोकों के कल्याण के लिए (आदि में) स्मरण किया था, तब वह शंभु प्रादेश भर के लिंग के रूप में हमारे हृदय से बाहर आये और पुनः अतिशय वृद्धि को पाकर पंचक्रोशात्मक (काशी) हो गये, यह वही पंचक्रोशात्मक काशी है।

ब्रह्मज्ञानं तदेवाऽहं काशीहं स्थितिभागिनाम् ।
दिशामि तारकं प्रान्ते मुच्यन्ते ते तु तत्क्षणात् ॥

—काशी खण्ड—१ अ. ११६, श्लोक. ३२

अर्थ—विश्वनाथ जी स्वयं कहते हैं स्वभावतः मनुष्यों के पंचेन्द्रिय चञ्चल होने से ब्रह्मज्ञान का उपदेश कहाँ हो सकता है, इसी कारण मैं काशी में अन्त समय में ब्रह्मज्ञान का उपदेश करता हूं। अतएव काशीवासिजन अन्त समय उसी ब्रह्मज्ञान रूप तारक मन्त्र के उपदेश से उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं, और सबसे बड़ी

विशेषता तो यह है कि काशी में मरने वाला कैसा भी पापी, दुराचारी, चरित्रहीन, चाण्डाल क्यों न हो और चाहे पुण्यात्मा हो, सबको भगवान् विश्वनाथ जी एक ही प्रकार की मुक्ति देते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः।
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः॥
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते श्रृणु प्रिये॥
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे लालाटाक्षा वृषध्वजाः।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते नात्र संशयः॥

—मत्स्य पुराण

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वर्ण-शंकर (दोगला), स्त्री, म्लेच्छ, संकीर्ण, हिन्दू और म्लेच्छ से उत्पन्न पाप योनि, चाण्डाल आदि प्राणिमात्र और सभी कीट, पतंग, चींटी पक्षी, मृग आदि जीव मात्र जो (काशी) अविमुक्त क्षेत्र में काल के वस देह का त्याग करते हैं वे मरने वाले सभी प्राणि-मात्र मस्तक में अर्धचन्द्रधारी और ललाट में नेत्र और वृषध्वज बनकर सदा शिव रूप हो जाते हैं।

अतएव यह निश्चय है कि काशी में सबको मुक्ति मिलती है।

वाराणसीह करूणामयदिव्यमूर्तिरूत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत्सुखेन।
विश्वेशवृङ् महसि यत्सहसा प्रविश्य रुपेण तां वितनुतां पदवीं दधाति॥

—काशी खण्ड अ० ३० श्लोक. ७१

अर्थ—इस संसार में वाराणसी काशी साक्षात् करुणामयी अलौकिक मूर्ति है क्योंकि जहाँ प्राणि-मात्र सुखपूर्वक (मरते हैं) देह-त्याग

करते हैं, उसी समय विश्वनाथ जी के (तारक मन्त्र के उपदेश से अज्ञान रूपी पाप का तत्काल नाश होकर) ज्ञान रूप ज्योति में प्रवेश करते ही केवल मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः।

—काशी खण्ड अ. ३२ श्लोक ७४

अर्थ—जिन मनुष्यों की कहीं भी गति नहीं हो सकती उन मनुष्यों की गति वाराणसी काशीपुरी में होती है।

अविमुक्तगुणान्वक्तुं देव—दानव—मानवाः।
न शक्यन्ते ऽप्रमेयत्वात् स्वयं यत्र भवः स्थितः।

—मत्स्य पुराण

अर्थ—जिसमें स्वयं श्री विश्वेश्वर विश्वनाथ ही सदा सर्वदा निवास करते हैं, उस अविमुक्त क्षेत्र काशी के विषय में देवता, दानव और मनुष्य वर्णन नहीं कर सकते, कारण यह है कि काशी के गुण अप्रमेय गणनारहित हैं। अर्थात् मापरहित है।

एवं ज्ञात्वा तु मेधावी नाविमुक्तं त्यजेन्नरः।
अविमुक्तप्रसादेन विमुक्तो जायते यतः।

—काशी खण्ड व. ७७ श्लोक. २५.

अर्थ—यह विचार कर बुद्धिमान् मनुष्य को कभी भी काशी नहीं छोड़नी चाहिए, इस काशी की कृपा और प्रसाद से महादुर्लभ मुक्ति प्राप्त होती है।

तीर्थार्थी न बहिर्गच्छेन् न देवार्थी कदाचन।
सर्वतीर्थानि देवाश्च वसन्त्यत्राविमुक्तके॥

अविमुक्तं समामाद्य न त्यजेन्मोक्षकामुकः

ब्रह्मवैवर्त पुराणं, काशी रहस्य

अर्थ—तीर्थ-स्नान तथा देवता के दर्शनार्थ यात्रा भी, (मुक्ति) नहीं मोक्ष की इच्छा करने वाले मनुष्य को काशी छोड़कर बाहर करनी चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण देवता काशी में आकर काशीवास करते हैं। अविमुक्त मुक्ति क्षेत्र में मुक्ति की कामना वाले मनुष्य को अविमुक्त मुक्ति क्षेत्र को प्राप्त कर काशी में वास करना चाहिए। काशी छोड़कर बाहर जाने की वासना को भी छोड़ देना चाहिए।

स्वस्वजात्यनुसारेण यो धर्मो यस्य कीर्तितः।
तत्तद्धर्मपरैरेव सेव्या वाराणसी पुरी॥

—पद्मपुराण

अर्थ—अपने-अपने जाति के अनुसार जो धर्म शास्त्र में जिसके कहे गये हैं उस धर्म में जो जाति तत्पर रहती है उन्हीं मनुष्यों का वाराणसी पुरी काशी में काशीवास सफल होता है।

सेव्योत्तरवाहिनी नित्यं लिंगानर्च्य प्रयत्नतः।
दमो दानं दया नित्यं कर्तव्यं मुक्तिकांक्षिभिः॥

—काशीखण्ड अ. ६५ श्लोक ६४

अर्थ—मुक्ति चाहने वाले काशीवासियों को नित्य ही उत्तर वाहिनी, गंगा में स्नान कर प्रयत्नपूर्वक शिव लिंग का दर्शन पूजन करना चाहिए। विश्वनाथ जी के आसपास रहने वाले भक्तों को मणिकर्णिका घाट में स्नान कर विश्वनाथ जी का दर्शन पूजन करने से मुक्ति हस्तामलकवत् होती है, और अपनी इन्द्रियों को वस में

रखकर यथाशक्ति प्रतिदिन दान देना और समस्त प्राणियों में दया करनी चाहिए ।

ये काश्यां धर्म्मभूयिष्ठा निवसन्ति मुनीश्वराः ।
ते तारयन्ति चात्मानं शतपूर्वान् शतावरान् ॥

—काशी मा० ८ श्लोक २

अर्थ—मननशील महात्मा जनों को स्वयं सत् धर्म का पालन करते हुए श्रोताओं को नित्य सद्धर्म का उपदेश काशीखण्ड, काशी-रहस्य और शिवरहस्य, शिवपुराण, लिंग पुराण काशी मोक्ष निर्णय काशी महात्म्य काशी मुक्ति निर्णय 'जो काशी-वासियों के प्राण हैं' इनका नित्य श्रवण करना कराना चाहिए, शिव, गीता, महिम्नस्तोत्र आदि शिव और काशी सम्बन्धी काशी खण्ड, काशी रहस्य, शिव रहस्य, शिव पुराण, आदि शंकराचार्य के ग्रन्थ लिंग पुराण, काशी दर्शन यात्रा और रामायण श्रीमद्‌भागवत, शिवगीता, श्रीमद्‌भगवद्‌-गीता, उपनिषद् आदि ग्रन्थों की कथा सुनना, सुनाना चाहिए । वेदान्त की कथा सुनाना और सुनना चाहिए चूँकि विश्वनाथ भगवान् को वेदान्त अत्यन्त प्रिय है । वेदान्त का श्रवण मनन और निदिध्यासन करने वाले भक्त के प्रति विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं । काशी की भूमिज्ञान की भूमि है काशी में रहने वाले प्राणी ज्ञान स्वरूप माने जाते हैं ।

जो वक्ता उपदेश सुनते हुऐ काशी में निवास करते हैं, और काशी में नित्य कथा करते हुए उपदेश देते हैं, उनके पूर्व के एक सौ (१००) पितृगण सौ पीढ़ियों के पितरों को साथ में लेकर संसार सागर से तरते हैं, और मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

संवत्सरं वसंस्तत्र जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
अपरस्वविपुष्टाङ्गः परान्नपरिवर्जकः ॥ ६२
परवादरहितः क्रिंचिद्दानपरायणः ।
समाः सहस्रमन्यत्र तेन तप्तं महत्तपः ॥ ६३ ॥

—काशी खण्ड अ. २५ श्लोक ६२ से ६३ तक

अर्थ—जो काशीवासी क्रोध और अपनी इन्द्रियों को जीतकर अपने धन से अपना पालन, पोषण करता हुआ पराये अन्न, निन्दा आदि को त्यागकर काशी दर्शन यात्रा करता हुआ किंचित् प्रतिदिन दान करता हुआ, एक वर्ष पर्यन्त काशी वास करता है उसको अन्यत्र सहस्र वर्ष तक तप करने का फल प्राप्त होता है ।

विश्वेशानुगृहीतानां विच्छिन्नाखिलकर्मणाम् ।
भवेत्काशीं प्रति मतिर्नेतरेषां कदाचन ॥ १३०
काशीं प्रति मनस्तेषां निःशेषक्षालितेनसाम् ।
त एव मानवा लोके सत्यं नृपशवो परे ॥ १३१

—काशी खण्ड अ. ५० श्लोक १३० से १३१ तक

अर्थ—काशी की दर्शन यात्रा की ओर उन्हीं की बुद्धि आशक्त है जिनपर विश्वनाथ भगवान की पूरी कृपा होती है और जो मनुष्य अपने समस्त कर्म बन्धनों को काट चुके हैं तथा काटने की इच्छा रखते हैं । जो लोग काशी की दर्शन यात्रा करना चाहते हैं वह लोग अपने समस्त पापों को धो डालते हैं ।

परमेतेपि पशव आनन्दवनचारिणः ।
सदानन्दाः पुनर्देवा न नन्दनवनाश्रिताः ।

काशी मा० ८ श्लोक २

अर्थ—आनन्दवन काशी में विचरने वाले पशु-गण, गाय, सांड, मृग कुत्ते आदि नन्दन वन विहारी देव की अपेक्षा बहुत ही अच्छे माने जाते हैं। क्योंकि काशी के सम्पूर्ण प्राणी सब सदा आनन्दमय जीवनमुक्त हो गये हैं।

जिस दिन दर्शन, पूजन यात्रा करने की इच्छा उत्पन्न हो वही शुभ मुहूर्त है।

काशीमुद्दिश्य यातानां सर्वः स्यात्समयः शुभः।
मंगलं सकलं वस्तु न किंचित् विचारयेत्॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण

तथा सदा कृतयुगं चास्तु सदा चैवोत्तरायणम्।
न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये॥

—काशी खण्ड अ. श्लोक

अर्थ—काशी में सभी रहने वालों को सभी काल, समय, शुभ है और सभी वस्तु मंगल है। उत्तरायण और दक्षिणायन, ग्रहों का उदय-अस्त और तिथि, वार नक्षत्र आदि का भी काशी में किंचित् विचार नहीं करना चाहिए तथा काशी में सदा सत्ययुग है और उत्तरायण है, ग्रहों के उदय व अस्त का भी दोष विश्वेश्वर के आलय काशीपुरी में नहीं है, जब इच्छा हो तब काशी की दर्शन-पूजन-यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए।

कलौ विश्वेश्वरो देवः कलौ वाराणसी पुरी।
कलौ भागीरथी गंगा दानं कलियुगे महत्॥

—काशी खण्ड अ. श्लोक।

अर्थ—कलियुग में भगवान् विश्वेश्वर ही देवता है, वाराणसी ही पुरी है। भागीरथी ही गंगा है और दान ही महान् कल्याण-कारी है।

मरणं मंगलं यत्र विभूतिर्यत्र भूषणम् ।
कौपीनं यत्र कौशेयं काशी केनोपमीयते ॥

—काशी खण्ड अ.

अर्थ—उस काशी की उपमा किससे दी जा सकती है जहाँ मरना भी मंगल ही मंगल है, विभूति धारण ही भूषण है और कौपीन (लँगोट) ही रेशमी वस्त्र है।

मध्यमेश्वरभारभ्य यावद् देहलिविघ्नपम् ।
सूत्रं स्थाप्य चतुर्दिक्षु भ्रामयेन्मण्डलाकृति ॥
तत्र या जायते रेखा तन्मध्ये क्षेत्रमुत्तमम् ।
काशीति च विदुर्वेदास्तत्र मुक्तिः प्रतिष्ठिता ॥
कृते त्रिशूल वज्ज्ञेयं त्रेतायां चक्रवत्तथा ।
द्वापरे तु रथाकारं शंखाकारं कलौ युगे ॥
मुखंशंखस्य गंगायां पृष्ठं देहलिसिन्निधौ ।
वामपार्श्वं स्थितं तोयं रामाख्यं रणाभिध्रम् ॥

—काशी खण्ड अं. श्लोक ।

मध्यमेश्वर से आरम्भ कर देहली विनायक तक चारों दिशा में एक सूत्र मण्डलाकृति घुमावै उससे जो रेखा बने उसके मध्य का उत्तम क्षेत्र काशी नाम का है वेदों ने गङ्गा देहली विनायक और असी और वरुणा के बीच में मुक्तिभूमि चुना है।

काशी सत्युग में त्रिशूल के आकार में, त्रेता युग में चक्र के आकार में, द्वापर युग में रथ के आकार में और कलियुग में शंख के आकार में बसती है। शंख का मुख गंगा में पीठ देहली विनायक के निकट और बांयें पार्श्व में स्थित जल वरुणा में है तथा दाहिने तरफ अस्सी नदी है। यहाँ मनोकामना की प्राप्ति होती है। अहर्निश शिव-शिव नाम जपते हुए काम करते रहना चाहिए, शिव-शिव नाम जपने से मन, वाणी और शरीर से किया हुआ पाप का प्रायश्चित्त और पाप का नाश होता है। सभी भक्तों को शिवजी की उपासना करनी चाहिए। दर्शन पूजन उपासना करने से भक्ति प्राप्त होती है।

मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजवन्धुभिः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ ६८ ॥
जरया परिभूता ये व्याधिविक्लवीकृताः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ६५ ॥
पदे-पदे समाक्रान्ता ये विपद्भिरहर्निशम्।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ७६ ॥

—कारी खण्ड अं. ३२ श्लोक ६८ से ७६

अर्थ—जो माता पिता और बन्धुओं से परित्यक्त हैं, जिनका कोई आश्रय नहीं है उनके लिए वाराणसी काशी आश्रय है। जो जरा से पीडित हैं और जो रोग के द्वारा विकल किए गये हैं जिनका कोई आश्रय नहीं है उनका एकमात्र आश्रय वाराणसी है। जो पद पद पर विपत्तियों से रात दिन आक्रान्त हैं [ढके हुए हैं] जिनका कोई सहारा नहीं है उनका सहारा वाराणसी है।

काशी की महिमा का ग्रन्थों में प्रमाण :—

(१) यजुर्वेद (२) जाबालोपनिषद् (३) रामतापनीयोपनिषद् (४) लिखित स्मृति (५) शंखस्मृति (६) पाराशरस्मृति (७) महाभारत [वनपर्व अ० ८५, भीष्मपर्व अ० २४, कर्णपर्व अ० ५, अनुशासन पर्व अ० ३०] (८) शिवपुराण (९) लिंगपुराण (१०) स्कन्दपुराण (११) ब्रह्मवैवर्तपुराण (१२) नारदीयपुराण [उत्तरखण्ड अ० २९, ४८, ५०, ५१ आदि] (१३) ब्रह्मपुराण [अ० ११] (१४) कूर्मपुराण (१५) ब्राह्मीसंहिता (अ० ३१ से ३५ तक) (१६) मत्स्यपुराण (अ० १८० से १८५) (१७) पद्मपुराण में (सृष्टिखण्ड अ० १४ तथा स्वर्गखण्ड अ० ३३ से ३७ तक भूमिखण्ड अ० ६१) (१८) वामनरापुराण अ० ३० में (१९) अग्निपुराण [अ० १२२] (२०) मार्कण्डेयपुराण [अ० ८ में] (२१) वायुपुराण (२२) सौरपुराण (२३) भविष्यपुराण (२५) शिवरहस्य (२५) काशी माहात्म्य (२६) वाल्मीकि रामायण (२७) श्रीमद्भागवत (२८) देवीभागवत (२९) सनत्कुमार संहिता (३४) त्रिस्थलीसेतु में (३१) नैषधचरित (३२) काशी रहस्य (३३) काशी दर्पण (३४) काशी प्रकाश (३५) काशी स्थिति चन्द्रिका (३६) काशीमुक्ति विवेक (३७) काशी तत्त्व विवेक (३८) काशी विनोद में (३९) काशी कुतूहल में (४०) गो० तुलसीदस कृत रामायण में ।

विशेष रूप से काशी की महिमा का वर्णन है और सनातन धर्म सम्बन्धी अनेक सद्ग्रन्थों में तथा अन्य विदेशी धर्मावलम्बी

विद्वानों ने भी काशी की महिमा की प्रशंसा की है ,लिखा है। जिसको आप समझते हैं यह कुछ भी नहीं करता है और इससे सब कुछ प्राप्त है लेकिन वह गुप्त रूप से मन्दिरों, देवताओं का दर्शन पूजन यात्रा करता है और मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराता है, सद्धर्म का पालन करता है और यथाशक्ति दान देता है इसलिए वह धन-धान्य से सम्पन्न है और सुखी है।

काशी की दर्शन यात्रा करने वाले यात्रीसे कालभैरव, ढुण्ढि-राज, दण्डपाणि, अन्नपूर्णा, श्री विश्वनाथ जी प्रसन्न होते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष उनके हस्तामलक होता है, काशी की दर्शनयात्रा करने वाले यात्री को रहने की व्यवस्था धन, सम्पत्ति, सुख-करनेवाले को विश्वनाथ शान्ति देकर जीवन्मुक्त बना देते हैं और अन्त में मोक्ष देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है जैसा काशी खण्ड में लिखा गया है वही सही पाया गया।

काल भैरव तथा भैरव के प्रसन्न होने से सम्पूर्ण रोग स्वतः नष्ट होते हैं, गंगा स्नान मन्दिर का दर्शन पूजन और जीर्णोद्धार कराने से काल भैरव प्रसन्न होते हैं और जीवन पर्यन्त धन, सम्पत्ति देते हैं, मरने के बाद केवल मोक्ष देते हैं।

———

काशी-मुक्ति-दर्शन । २ ।

भस्मजाबालोपनिषद् अध्याय २ श्लोक

त्रिशूलगां काशीमधिश्रित्य त्यक्तासवोऽपि मय्येव संविशन्ति । एष एवादेशः एष उपदेशः, एष एव परमो धर्मः ।

(भस्म जाबालोप० अ० २)

अर्थ-भगवान् शंकर के त्रिशूल पर स्थित काशीपुरी में रहकर प्राण त्यागने मरने पर जीव मुझको ही पाता है । मेरा यही आदेश है, उपदेश और यही परम धर्म है ।

अत्रहि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे । येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेवनिषेवेत अविमुक्तं न विमुंचेत् ।

अर्थ-काशी में प्राण त्यागने के समय दुःखों का नाश करने वाले रुद्र भगवान् "तारक" मन्त्र देते हैं । जिस मन्त्र के प्रभाव से जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है । अतः काशी सेवन अवश्य करें इस अविमुक्तपुरी का निवास कभी भी न छोड़े ।

(जाबालोपद्)

प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्-४/१

वाराणस्यां मृतो वापि इदं वा ब्रह्म यः पठेत् ।
एकेन जन्मना जन्तुर्मोक्षं च प्राप्नुयादिति ॥

अर्थ-जो प्राणी श्री काशी जी में देह त्याग करते है

अथवा अन्त में ॐ तारक मन्त्र को पढ़ता है। उसे एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है।

मुक्तिकोपनिषद्

यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः । ॥२०-२१॥
जन्तोर्दक्षिकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत् ॥ ॥ २१ ॥

अर्थ-काशी में जहाँ कहीं भी मरने पर भगवान् शंकर उस प्राणी के दाहिने कान में तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं। उपदेश पातेही वह तत्क्षण मुक्त होता है।

महाभारत अनुशासन पर्व-अध्याय-१८

कीटपक्षिपतंगानां तिरश्चामपि केशव । ॥ ६८ ॥
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ ॥ ६९-१॥

अर्थ-कीट, पक्षी, पतंग आदि तिर्यग्योनि के प्राणी भी यदि महादेवजी की शरण लेते हैं तो उनको जन्म मरण का भय नहीं रह जाता।

आत्मपुराण :-

कृमिकीटपतंगा वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
मृतश्चतुर्विधो जन्तुस्त्रिनेत्रत्वमुपैति हि ॥

अर्थ-काशी में मरने से कृमि-कीट, पतंग तथा विद्वान् ब्राह्मण ये चारों प्रकार के प्राणी भगवान् त्रिनेत्रत्व (शिवत्व) को प्राप्त होते है।

श्री मद्भागवत द्वादश स्कन्ध-अध्यया-१३

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा । ॥ १७ ॥

अर्थ—सूत जी ऋषियों से कहते हैं कि अनेक क्षेत्र हैं पर उसमें काशी ही एक उत्तम क्षेत्र है।

दर्शनाद्देवदेवस्य ब्रह्महत्या प्रणश्यति।
प्राणानुत्सृज्य तत्रैव मोक्षं प्राप्नोति मानवः॥

अर्थ—देवों के देव माहादेव जी के दर्शन से ब्रह्म हत्या का भी पाप छूट जाता है और काशी क्षेत्र में प्राणत्याग करने से मनुष्य मोक्ष पाता है।

श्री मत्स्वामी आदि शंकराचार्य जी :–

काशी धन्यतमा विमुक्तनगरी सालंकृता गंगया।
अत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किंकरी॥

अर्थ—काशी जी धन्य तमा अर्थात् अत्यन्त पुण्य रूप उत्तम नगरी है जहाँ गंगा जी शोभायमान हैं। उसमें भी मणिकर्णिका उत्तम सुख देनेवाली है क्योंकि मुक्ति उसकी दासी है।

शिवपुराण को. स. सं. अध्याय–२३

काश्यां यो वै मृतश्चैव तस्य जन्म पुनर्न हि। [५२]

अर्थ—काशी में मरने वाले प्राणी फिर संसार में जन्म नहीं लेते क्योंकि वे सायुज्य मुक्ति पा जाते हैं।

शिव रहस्य–

जले स्थलेन्तरिक्षे वायत्र कुत्रापि वा मृताः।
तारकं ज्ञानमासाद्य कैवल्यपदभागिनः॥

अर्थ—काशीजी में पृथ्वी, जल, आकाश आदि किसी जगह भी यदि मृत्यु हो तो वह प्राणी भगवान् शिवजी के तारक मन्त्रोंपदेश द्वारा मोक्ष पद का भागी होता है।

स्कन्द पुराण–

असीवरुणयोर्मध्ये पंचक्रोशमहत्तरम् ।
अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा त्वितरे जनाः ॥

अर्थ–असी और वरुणा के बीच में पंचक्रोश पञ्चक्रोशी [काशीक्षेत्र] है यह अतिशय श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें देवता लोग भी जन्म लेकर आना चाहते हैं, तब इतर मनुष्यों की कथा ही क्या है।

काशी खण्ड–

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि हि ।
काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥

कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षाः,
जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।
मण्डूकमत्स्याः कृमयोपि काश्यां,
त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति ॥

अर्थ–पृथ्वी के सभी तीर्थ मुक्ति क्षेत्र केवल काशी को प्राप्त कराते हैं, परन्तु काशी को पाकर प्राणी मुक्त हो जाते हैं अर्थात् अन्य करोड़ों तीर्थों से बड़ी यह काशी पुरी है। कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष, जलचर, थलचर आदि सभी प्राणी यहाँ अपना शरीर छोड़कर कल्याण पद को प्राप्त होते हैं।

येनैकजन्मना मुक्ति र्यस्मात् करतले स्थिता ।
अनेकजन्मसंसारबन्धनिर्मोक्षकारिणी ॥

अर्थ—श्री काशी जी में एक ही जन्म में मुक्ति मुट्ठी में आ जाती है। क्योंकि यह अनेक वार जन्म देने वाले संसार बन्धन की नाश-कारणी है।

कुत्रचिच्च शुभं वर्धेत् कुत्रचित्पापसंक्षयः।
सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीपुरीं विना ॥

[४६ अध्याय—२३]

अर्थ—कोई क्षेत्र पुण्य को बढ़ाता है, कोई पापों का नाश करता है, परन्तु काशीवास समग्र कर्मों का नाश करने वाला है। अर्थात् मुक्ति देने वाली केवल श्री काशीपुरी ही है।

शिवपुराण—कोटिरुद्रसंहिता—अध्याय—२३

सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः।
अस्यां पुर्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः॥ [१४]

अर्थ—सब वर्ण आश्रम वाले बालक वृद्ध तथा युवावस्थावाले प्राणी काशी जी में शरीरत्याग करने से मुक्त होते हैं। इसमें कोई सशय नहीं है।

मत्स्य पुराण

एक एव प्रभावोस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि।
एकेन जन्मना देवि मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥

हे देवी, इस [काशी जी] की सबसे बड़ी महिमा यह है कि यहाँ एक ही जन्म में जीव उत्तम मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

नारद पुराण [अध्याय ६ श्लोक ३७]

योजनानां शतस्थोपि विमुक्तं स्मरेद्यदि ।
बहुपातकपूर्णोपि पदं गच्छत्यनामयम् ।।

अर्थ–यदि एक सौ योजन पर स्थित रहकर भी श्री काशी जी का स्मरण करें तो बहुत पाप कर्न से पूर्ण होने पर भी वह प्राणी पापों से रहित हो जाता है ।

कूर्म पुराण–पूर्वार्ध, अध्याय–३१

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते ऽक्षयमीश्वरः । ।। ६० ।।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तेथैव ह्यविमुक्तकम् ।।

अर्थ–श्री काशी जी में साक्षात् शंकर जी जीव को मरण समय में तारक ब्रह्म मन्त्र का उपदेश देते हैं, यह वही मोक्ष दायनी काशीपुरी है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण

अविमुक्तं समासाद्य न त्यजेन्मोक्षकामुकः ।
क्षेत्रन्यासं दृढ़ कृत्वा वसेद्धर्मपरः सदा ।।

अर्थ–अविमुक्त काशी क्षेत्र को पाकर मुक्ति की इच्छा रखनेवाला पुरुष क्षेत्र–संन्यास को दृढ़ करके धर्मपरायण होकर काशीवास करे ।

पद्म पुराण

तीर्थांतराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद ।
अन्तःकरणसंशुद्धि जनयन्ति न संशयः ।।

वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परन्तु सा ।
प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः ॥

अर्थ—अन्यान्य तीर्थ, विष्णु भक्ति आदि केवल अन्तःकरण की शुद्धि करती हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु हे नारद जी, काशी तारक ब्रह्म के उपदेश से मुक्ति पद को प्रदान करती है ।

काशी खण्ड

उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत् ।
सर्वोप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः ॥

अर्थ—शंकर जी कहते हैं—हे प्रिये, काशी में मरण के लिए कोई समय या पर्व विशेष की गिनती नहीं है । क्योंकि इस अविमुक्त क्षेत्र में जो मरता है उसके लिए सब समय और दिन एकसा है ।

सनत्कुमार संहिता

रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चंडालवेश्मन्यथवा श्मशाने ।
कृतप्रयत्नोप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम् ॥

अर्थ—इस काशीपुरी की गलियों में, मूत्र, विष्टा से दूषित स्थानों में चाण्डाल के गृह में, या श्मशान भूमि में कहीं भी विधि से या अविधि से मरने पर जीव मोक्ष पद को प्राप्त करता है ।

काशी खण्ड—[अध्याय—३२]

संसारभयभीता ये बद्धाः कर्मबन्धनैः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ [७८]

श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ।। [७९]

अर्थ—जो लोग सांसारिक भय से डरे हुए हैं, अर्थात् जो कर्म-पाश से बँधे हुए हैं और जिन्हें कहीं गति नहीं मिलती उनके लिए काशी गति देने वाली है। जो वेद शास्त्र नहीं जानते अथवा शौचादि नित्य क्रियाओं से रहित हैं और जिनकी कहीं गति नहीं उनके लिए भी यह काशी नगरी मोक्ष दायिनी है।

पद्म पुराण

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः ।
ततः ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः ।।

अर्थ—काशी में मरे हुए सज्जन साक्षात् सालोक्य को प्राप्त करके सारूप्य मुक्ति पाते हैं। फिर वे सान्निध्य मुक्ति का भी सुख-भोगते हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मैकता को प्राप्त करके पुनः संसार में नहीं आते।

ब्रह्म पुराण

चतुर्धा वितते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः ।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम् ।।

अर्थ—इस काशी क्षेत्र में चारों ओर फैले हुए भगवान् शिवजी ब्रह्मैकत्व को बताने वाले तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं और उप-देश प्राप्त करते ही प्राणी तत्क्षण ही मुक्त हो जाता है।

गर्ग संहिता

विश्वेश्वरस्य देवस्य काशीनाम्ना महापुरी ।
यत्र पापी मृतः सद्यः परं मोक्षं प्रयाति हि ।।

अर्थ–यह काशी भगवान् श्री विश्वनाथजी की महापुरी है यहाँ पर प्राण छोड़ने अथवा मरनेवाला प्राणी उत्तम मोक्ष को प्राप्त करता है ।

लघु आश्वलायन स्मृति अध्याय–१

"यः कश्चिन्मानवो लोके वाराणस्यां त्यजेद्वपुः ।
स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः ॥ [१८६]

अर्थ–महर्षियों ने कहा है कि जो लोग मनुष्य लोक में जन्म लेकर काशी में शरीर त्याग करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं ।

पद्मपुराण पाताल खण्ड, अध्याय–१११ श्लोक ४७—

यूकाश्च दंशापि मत्कुणाश्च मृगादयः कीटपिपीलिकाश्च ।
सरीसृपा वृश्चिकसूकराश्च काशीमृताः शंकरमाप्नुवन्ति ॥

अर्थ–यूका [जूं] डांस खटमल मृगादि जीव कीट चीटी तथा सर्पादि विच्छू और सूकर भी काशी में मरकर शिव को प्राप्त होते हैं।

शिवगीता षष्ठ अध्याय–

गर्भ–जन्म–जरा–मृत्यु–संसार–भव–सागरात् ।
तारयामि यतो भक्तं तस्मात्तारोऽहमीरितः ॥

अर्थ–शंकर जी कहते हैं कि गर्भ वास जन्म जरा और मृत्यु रूपी संसार सागर से मैं भक्तों को तार देता हूं । इसलिए मेरा नाम तारक कहते हैं । आनन्दपूर्ण जीवन्मुक्ति को देने वाली ऐसी काशी पुरी में, काशी से वाहर जाने के सभी संकल्प को छोड़कर, श्रद्धा भक्ति से युक्त होकर, निष्ठा पूर्वक काशीवास करना चाहिए और

पाप कर्म को छोड़कर काशीवास करना चाहिए । चारों वेदों में उपनिषदों में, अट्ठारह पुराणों में, शास्त्रों में सभी धार्मिक ग्रन्थों में काशी की महिमा काशी के माहात्म्य और काशीवास का वर्णन लिखा है ।

चारवेद अठारह पुराण एवं उपपुराण छः शास्त्रों एवं उप-शास्त्रों एवं उपनिषदों श्रुति स्मृति आदि सभी शास्त्रों में काशी माहात्म्य के विषय में विस्तार से वर्णन मिलता है ।

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
अविमुक्ते प्रविटस्य तत्सर्व्वं व्रजति क्षयम् ॥३०॥
कूर्म पुराणान्तर्गत वाराणसी माहात्म्य

अर्थ—हे देवी पूर्व सहस्रों जन्मों में जो पाप पूर्व से संचित रहता है वह सब पाप काशी अविमुक्त क्षेत्र में प्रवेश करने मात्र से नष्ट हो जाता है !

अविमुक्तं परं ज्ञानं अविमुक्तं परं पदम् ।
अविमुक्तं परन्तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम् ॥४४॥

अर्थ—अविमुक्त काशी ही परम ज्ञान है, अविमुक्त काशी ही परम पद है, अविमुक्त काशी ही परम तत्त्व है और अविमुक्त काशी ही परम शिव है

श्री गणेशाय नमः

श्री जगद्गुरु सुरेश्वराचार्य कृत

काशी मोक्ष- निर्णय ३

नमस्कृत्य जगन्नाथं मायया चन्द्रशेखरम् ।
गङ्गाधरं गरच्छायनीलकण्ठं मुपास्महे ॥

जो अपनी माया से मस्तक में चन्द्रमा को धारण करने के कारण चन्द्रशेखर कहे जाते हैं, गङ्गा को अपनी जटा जूट में धारण किये हुए हैं। और काल कूट विष को गले में धारण करने के कारण नील कण्ठ कहे जाते हैं उन जगत् के नाथ अतएव जगन्नाथ को नमस्कार करके उनकी उपासना करता हूं।

वाराणसीं पुरीं पुण्यां येधितिष्ठन्ति जन्तवः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म रुद्रस्तेषां दयानिधिः॥

जो जीव जन्तु परम पवित्र पुण्य उत्पन्न करने वाली वाराणसी पुरी में निवास करते हैं, उन्हें दया निधि भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं।

प्राण-प्रयाण-समये प्राप्य ज्ञानं महेश्वरात्।
मुच्यन्ते जन्तवः सर्वे वद्धाः स्वाभाव्य-विद्यया॥

प्राण के छूटते समय भगवान् महेश्वर से ज्ञान प्राप्त कर अपनी स्वाभाविक अविद्या से बँधे हुए सब जीव मुक्त हो जाते हैं।

मोक्षश्च तेषां तादात्म्यं घटेतरखयोरिव।
पुनर्देहान्तरारम्भे कारणं नास्ति किञ्चन्॥

जिस प्रकार घटाकाश का भेद घट के नष्ट हो जाने पर महाकाश में तादात्म्य (एक रूपता) रूप हो जाता है वैसे ही काशी में देह त्याग करने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है। क्योंकि देहान्तर के आरम्भ में भेद ज्ञान ही कारण है भेद के नष्ट हो जाने पर कारण का नाश हो जाता है और पुनः देहान्तर की प्राप्ति नहीं होती

यद्यपि मुक्ति चार प्रकार की है सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य इनमें अन्य दार्शनिकों की दृष्टि से जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह पूर्ण मोक्ष नहीं है किन्तु सायुज्य मुक्ति ही वेदान्तियों को अभिमत है। उस से तादात्म्य स्थापित होता है। यदि कहा जाय कि सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मो का नाश न होने से तादात्म्य मुक्ति नहीं वन सकती तो ठीक नहीं क्योंकि यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि "नाभुक्तं क्षीयन्ते कर्म" श्रुति का क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे, श्रुति से समन्वय करने पर ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन के आधार पर सञ्चित कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रारब्धं कर्मभोगेन क्षीयते ज्ञानकारणम्।
ततो विदेहकैवल्यं भवतीति सुनिश्चितम्॥

अतएव प्रारब्ध कर्मो का भोग से क्षय होता है और सञ्चित कर्मो का ज्ञान के द्वारा क्षय होता है उससे विदेह कैवल्य प्राप्त होता है यह मत सुनिश्चित है। क्रियमाण कर्म यज्जुहोषि यदश्नासि—— ——तत् कुरुष्व मदर्पणं के अनुसार ज्ञानी को क्रियमाण कर्म का फल प्राप्त नहीं होता।

सञ्चित कर्म ज्ञानाग्नि से नष्ट हो जाता है। प्रारब्ध कर्म जीवन्मुक्त को भी भोगना पड़ता है।

उपास्तेः पररूपत्वात् तारतम्यपदास्थितेः।
ज्ञानाग्निना विनष्टत्वात् विश्लेषः पूर्वकर्मणाम्॥

मोक्ष के मुख्य तीन साधन हैं ज्ञान, कर्म, और उपासना, इन तीनों में उपासना का सबसे प्रथम स्थान है, यह सबसे उत्तम साधन

है। ज्ञानरूपी अग्नि में सभी सञ्चित कर्म जल जाते हैं और उनमें फल लाने की शक्ति नहीं रह जाती। इसी कारण जीव के साथ उन कर्मों का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता, जीव एक दम असंग हो जाता है।

काश्यां विदेहकैवल्यं भवतीति सुनिश्चतम् ॥
काश्यां विदेहकैवल्यप्राप्तेरुत्तरकर्मणाम् ।
असंभवान्न विश्लेषो वेदितव्यो विचक्षणैः ॥

काशीपुरी में शरीर का परित्याग करने से तारक मन्त्र के बल से विदेह कैवल्य अवश्य ही हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, काशी में मरने पर जब विदेह कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है तब क्रियमाण और करिष्यमाण कर्मों का असर ब्रह्मीभूत जीव के ऊपर नहीं पड़ता उन कर्मों से यह असंग ही रहता है।

किमत्र प्रमाणम्

इस उपर्युक्त सिद्धान्त में क्या प्रमाण है ?

श्रूयते हि यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतं एवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते इति (छा० उ० ५.२४३)

जिस प्रकार मूंज के फूल की रूई आग के स्पर्शमात्र से भस्म हो जाती है इसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि के उत्पन्न होते ही जीव के सभी सञ्चित पाप कर्म क्षण भर में जलकर भस्म हो जाते हैं।

तर्हि पापकर्मणामेव विलयः श्रूयते न पुण्यकर्मणामिति चेत् न इत्याहः—

छान्दोग्य उपनिषद् की इस श्रुति में पाप्मानः शब्द के प्रयोग से जान पड़ता है कि ज्ञान रूपी अग्नि से पाप कर्मों का ही क्षय

होता है पुण्य कर्मों का नहीं होता यह आशङ्का उचित नहीं है क्योंकि—

ब्रह्मादीनां शरीराणि श्वशूकरशरीरवत् ।
यतो जिहासितान्येव तस्मात् धर्मोऽपि पाप्मगीः ॥

ब्रह्मादि के शरीर उसी प्रकार परित्याग करने योग्य होते हैं जिस प्रकार की कुत्ते और सूअर के शरीर, इसी तरह पाप कर्मों के कथन से पुण्य कर्मो का भी बोध होता है। अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि पाप कर्म और पुण्य कर्म सबों को जला डालती है।

इति वचनात् पुण्यकर्मारब्धानां ब्रह्मेन्द्रशरीराणां पापकर्मारब्ध श्वशूकरशरीरादिवज्जिहासितत्वाविशेषात् पुण्यस्यापि कर्मणः पाप्मत्वेन कीर्तनं युक्तम् तथा भगवता स्मर्यतेः—

इस पूर्वोक्त वचन से जिस प्रकार पुण्य कर्मों के द्वारा प्राप्त किये गये ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के शरीर पाप कर्मों के द्वारा पाये गये कूकर-सूकर के निन्दनीय शरीर के बराबर ही त्याज्य हैं उसी प्रकार पुण्य कर्म भी फल देने वाले होने के कारण बन्धन में डालने वाले हैं और अतएव पाप कर्मों के समान ही कहे गये हैं। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन भगवान् श्री कृष्ण जी ने श्री मद्भगवद्गीता में किया है :—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥

हे अर्जुन ! धग धग जलती आग जिस प्रकार ईंधन को जलाकर राख कर डालती है उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि सभी पाप और

पुण्य कर्मों को जला डालती है और जीव को बन्धन से मुक्त कर देती है।

यच्चोक्तं जीवन्मुक्तस्य ज्ञानोत्तरकालीनकर्मणां विश्लेषो न भवतीति तत्रेद प्रमाणम् :–

पहले कह चुके हैं कि जीवन्मुक्त अवस्था में ज्ञान प्राप्त होने के पीछे किए गये कर्मों का असर नहीं होता इस कथन में नीचे दी गई श्रुति प्रमाण है :–

यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्ते। एवं हैवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते इति।

[छा० उ० ४।१४३]

जिस प्रकार कमल के पत्ते में जल का संसर्ग नहीं होता उसी प्रकार तत्वज्ञानी को पाप कर्मों का फल नहीं होता। पाप कर्म अथवा पुण्य कर्म करने के कारण उसे बन्धन में नहीं पड़ना पड़ता।

प्रारब्धस्य च कर्मणः कर्मत्वाविशेषात् ज्ञानेन बाध्यत्वमुत्पद्यते इति चेत् न इत्याह–

अब यह प्रश्न उठता है कि संचित कर्म और प्रारब्ध कर्म ये दोनों प्रकार कर्म कर्म ही के नाम से ही प्रसिद्ध हैं अर्थात् कर्म कहने से प्रारब्ध एवं संचित इन दोनों प्रकार के कर्मों का ज्ञान होता है तो ज्ञान रूपी अग्नि से जिस प्रकार संचित कर्म क्षीण हो जाते हैं उसी तरह प्रारब्ध कर्मों का नाश भी क्यों नहीं हो जाता? श्रुति में तो केवल कर्म शब्द कहा गया है। इस शङ्का का समाधान नीचे दिये वचन से किया गया है :–

प्रारब्धस्योपजीव्यत्वात् तत्त्वज्ञानेन कर्मणः ।
अशक्यत्वाच्च मुक्तेर्योरिव बाधो न विद्यते ॥

जीव को मोक्ष तभी मिलता है जब कि उसके प्रारब्ध कर्म उसके सहायक होते हैं अर्थात् प्रारब्ध कर्मों के ही अनुसार जीव का आवागमन संसार में होता है । जब प्रारब्ध कर्म अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तो जब तक वे समाप्त नहीं हो जाते अपना फल देते रहते हैं । जिस प्रकार तीर जब धनुष से छूट जाता है तब वह अपना काम करके ही रुकता है बीच में नहीं । इसी प्रकार प्रारब्ध कर्म भी अपना काम करके ही समाप्त होते हैं ।बीच में उनको कोई रोक नहीं सकता ।

अथेदानीं परमप्रकृतेः प्रमाणं प्रतिपाद्यते ।

अब परम प्रकृति ही सबका आदि कारण है और वही सबमें प्रधान है इसका प्रमाण आगे की पंक्तियों में दिया जाता है :–

यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून् गमः ॥

[मनुस्मृति ८.९८]

तुम्हारे हृदय में बैठे हुए वैवस्वत राजा यम के साथ यदि तुम्हारा ऐक्य है तो तुम न तो गंगा नहाने जाओ और न कुरुक्षेत्र की यात्रा करने जाओ ।

इति गङ्गाकुरुक्षेत्रयोः निषेधमुखतो मुमुक्षुप्राप्यत्वमाह स्म भगवान आचार्यो मनुः ।

इस प्रकार भगवान् आचार्य मनु ने गंगा और कुरुक्षेत्र के सेवन का निषेध कहते हुए मोक्ष चाहने वाले को परब्रह्म के साथ तादात्म्य प्राप्त हो सकता है यह सिद्ध किया है।

(अब उपर्युक्त श्लोक के हर एक शब्द का अर्थ करते हैं)

यमः यमयति नियमयति तथा च श्रुतिः—

उस ईश्वर का नाम यम इस लिए पड़ा कि वह समस्त संसार का नियमन करता है। उसी के बनाये हुए नियमों से संसार का सञ्चालन होता। इसमें आगे दी गई श्रुति प्रमाण है—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्य आत्मा-शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ॥

(बृहदारण्यकोनिषद)

महर्षि याज्ञवल्क्य अरुण के पुत्र उददालक से कहते हैं कि जो आत्मा में वर्तमान है जो आत्मा के भीतर निवास करता है जिसे आत्मा अपने में स्थित नहीं जानता जिसका शरीर आत्मा है जो आत्मा के भीतर रहकर उसे अपने व्यापार में लगाता है और उसके ऊपर शासन करता है वही संसार के सब धर्मों से रहित अन्तर्यामी जगन्नियन्ता परमेश्वर ही तुम्हारी आत्मा है।

वैवस्वतः :—विवस्वान् पिता अस्येति—विवस्वन्तमधितिष्ठ तीत्यर्थः।

विवस्वान् अर्थात् सूर्य के पुत्र इनका तात्पर्य यह है कि सूर्य में व्याप्त होकर रहने वाले।

राजा राजते दीप्यते स्वयं प्रकाशते।

राजा उसे कहते हैं जो स्वयं प्रकाशमान हो जिसे प्रकाशित करने के लिए दूसरे के प्रकाश की आवश्यकता न पड़े। ईश्वर स्वयं प्रकाशमान है जैसा कि इस वचन से ज्ञात होता है :—

ज्योतिर्ब्राह्मणवाक्योक्तं ज्योतिष्ट्वं प्रत्यगात्मन :।
औपचारिकमन्यत्र भास्यत्वाद् भास्वदादिवत ॥

ज्योतिर्ब्राह्मण में कहा गया है कि यथार्थ ज्योति अर्थात् स्वाभाविक प्रकाश तो केवल आत्मा में ही है: आत्मा के अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ संसार में स्वयं प्रकाशमान् परमात्मा के सम्पर्क से प्राप्त होता है।

"यस्तवैष हृदि स्थितः" इति स्वानुभवप्रत्ययत्वं दर्शयति।

'जो ईश्वर तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ है" इस वचन से भगवान् मनु यह दिखलाते हैं कि इस विषय में गुरु वेदान्त आदि के वाक्यों पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं इसका अनुभव तो स्वयं किया जा सकता है।

"हृदि स्थितः" इति सर्वेषां भूतानां हृद्देशे सदा सन्निहितः,। हृदय में स्थित का अर्थ यह है कि वह अन्तर्यामी भगवान् प्राणिमात्र के हृदय में सर्वदा वर्तमान रहता है ऐसा कोई भी प्राणी नहीं जिसके हृदय में ईश्वर न बैठा हो। इसमें श्रुति और स्मृति दोनों प्रमाण हैं —

अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" इति श्रुतेः।

(तै० आ० ३, ११, १-२)

श्रुति का वचन है कि भगवान् विष्णु अर्थात् ईश्वर जो कि सम्पूर्ण जगत् के हृदय में विराजमान हैं संसार भर के नियामक हैं।

ते तव यो हृदि स्थितस्तेन परमात्मना अविवाद ऐकात्म्यं यदास्ति तदा गङ्गां कुरूक्षेत्रं च मा गाः ।

संसार भर के नियामक स्वयं प्रकाशमान और तुम्हारे हृदय में वैठे हुए ईश्वर के साथ यदि तुम्हारा ऐकात्म्य है तो तुम्हें गङ्गा और कुरुक्षेत्र जाने की आवश्यकता नहीं ।

गङ्गायां मरणं चैव दृढा भक्तिश्च केशवे ।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥

परम पावनी गङ्गा जी के तट पर शरीर का छूटना भगवान् विष्णु में अचल भक्ति का होना और ब्रह्मविद्या का जान लेना यह साधारण तप का फल नहीं वहुत कठिन तप करने पर इनकी प्राप्ति होती है ।

इति समप्रधानभावेन श्रीव्यासेनोक्तम् ।

इस प्रकार भगवान् व्यास ने गङ्गा के तट पर शरीर परित्याग विष्णु में अटल भक्ति एवं ब्रह्म विद्या ज्ञान को समान महत्व दिया है और संसार के बन्धनों से मुक्त करने वाले सब सुकर्मो में इन्हें प्रधान स्थान दिया है, और भी कहा गया है कि --

मरणे स्मरणं विष्णोः कथ्यतेऽत्यन्तदुर्लभम् ।
तदल्पेनैव कालेन गङ्गां संसेव्य लभ्यते ॥

मरने के समय विष्णु का स्मरण जिससे कि मनुष्य भव बाधा से छूट जाता है परम दुर्लभ वताया गया है । परन्तु थोड़े काल तक भी गङ्गा का सेवन कर लेने से मरण काल में भगवान् का स्मरण हो जाता है और उसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

यस्य तत्त्वज्ञानं नास्ति तस्य गङ्गायां कुरुक्षेत्रे वा यावद्देहावसानं तावत् स्थितौ सत्यां तत्वज्ञानावाप्तौ मोक्षो भवतीति भावः।

तात्पर्य यह है कि जिसे तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी उसे गङ्गा, कुरुक्षेत्र आदि के सेवन की आवश्यकता नहीं है परन्तु जिसे तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई उसे मरण पर्यन्त गङ्गा के तट पर या कुरुक्षेत्र में निवास करने से अन्त में तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और उसका मोक्ष हो जाता है।

किं नाम तत् कुरुक्षेत्रं यत्र देहावसाने सर्वस्य जन्तोः मोक्षः श्रूयते ?

कुरुक्षेत्र का महत्व जानकर प्रश्न होता है कि वह कुरुक्षेत्र कौन सा ऐसा उत्तम स्थान है जिसमें शरीर परित्याग करने के अनन्तर जीव मात्र को मुक्ति अनायास प्राप्त हो जाती है। इसी प्रश्न का समाधान बृहस्पति और याज्ञवल्क्य के संवाद से किया जाता है।

बृहस्पतिरुवाच—याज्ञवल्क्यं यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद् यत्रक्वचन गच्छति तदेव मन्येत तद्विमुक्तमेव। इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रमाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षी भवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत अविमुक्तं न विमुञ्चेदेवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ [जाबालोपषिद् १]

बृहस्पतिर्याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ वद नः कुरुक्षेत्रम् देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद् यत्रक्वचन गच्छतीति।

बृहस्पति ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा कि मुझे कुरुक्षेत्र के विषय में बताओ जो सब देवों के पूजन का स्थान है और सब

प्राणियों के लिए ब्रह्मलोक के समान है और जहाँ से मोक्ष के लिए दूसरी जगह जाना उचित नहीं है।

विश्वेश्वरेण कदाचिदपि मुक्तं न भवतीत्यविमुक्तम्। सर्व गतत्वेऽपि विशेषाभिव्यक्तिहेतोः। वै एवार्थः।

विश्वेश्वर इस क्षेत्र को त्याग कर कभी कहीं नहीं जाते इस लिए इसका नाम अविमुक्त है, यद्यपि सम्पूर्ण संसार में विश्वेश्वर व्याप्त हैं तथापि इस पुण्य क्षेत्र में वे विशेष रूप से निवास करते हैं और उनकी सत्ता इस क्षेत्र में प्रकट रूप से जान पड़ती है। इस श्रुति में "वै" शब्द का प्रयोग बता दिया गया है कि यहाँ तो वे अवश्य ही प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान हैं।

कुरुक्षेत्रम्=कुरुक्षेत्रशब्दितम्।

इस पुण्यतीर्थ का नाम जिसमें कि भगवान् विश्वेश्वर का सदा निवास रहता है, कुरुक्षेत्र है।

देवानां देवयजनम्=सर्वे देवा इज्यन्त इति। सर्वे देवा यत्र विश्वेश्वरं यजन्ति=पूजयन्ति वेति देवयजनम्।

"देवयजम्" इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—एक तो यह कि जहाँ सब देवताओं की पूजा होती हो। इसका कारण यह है कि इस पावन अविमुक्त क्षेत्र में सभी देवियाँ और सभी देवता अपने कुछ अंशों से निवास करते हैं।

अतः सभी देवों की इस तीर्थ में पूजा होती है। दूसरा अर्थ यह है कि इस तीर्थ में सभी देवता निवास करके श्री विश्वेश्वर भगवान् की पूजा और आराधना करते हैं।

सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् भवन्तीति भूतानि (भवन्ति = उत्पद्यन्ते) उत्पत्तिमन्ति कानि तानि ? जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जानि । तेषां सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ब्रह्मलोकः ।

समस्त भूतमात्र के लिए यह अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्मलोक के समान है । संसार में जितने उत्पन्न होनेवाले स्थावर-जंगम पदार्थ हैं वे सब भूत कहलाते हैं । ये उत्पन्न होने वाले पदार्थ चार प्रकार के होते हैं– जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज ।

मनुष्य, पशु आदि जीव जरायुज कहलाते हैं क्योंकि गर्भावस्था में इन जीवों का पाञ्चभौतिक शरीर एक चमड़े के थैले में, जिसे कि जरायु कहते हैं, लिपटा रहता है । पक्षी, सर्प आदि जीव अण्डज हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति अण्डों से होती है । स्वेदज वे होते हैं जो कि पसीने से उत्पन्न होते हैं, जैसे—खटमल, जुआँ, लीख आदि छोटे-छोटे कीड़े । उद्भिज्ज वे कहे जाते हैं जो कि भूमि को भेद-कर उत्पन्न होते हैं, जैसे–वृक्ष, पौधे, घास आदि । इन चारों प्रकार के भूतों के लिए पवित्र अविमुक्तक्षेत्र साक्षात् ब्रह्मलोक है ।

तस्मात् = अविमुक्ताद् यत्रक्वचन गच्छति = यत्र क्वापि न गच्छेत् मोक्षार्थम् क्षेत्रान्तरम् । ["व्यत्ययो बहुलम्" इति लकारव्यत्ययः ।] अविमुक्तं परित्यज्य क्षेत्रान्तरे मोक्षो न भवतीति भावः ।

ऐसे उत्तम अविमुक्त क्षेत्र से मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी भी दूसरे क्षेत्र में नहीं जाना चाहिए । श्रुति में दिए गए "गच्छति" शब्द का अर्थ वर्तमान काल में होने के कारण यद्यपि "जाता है" यह होना चाहिए परन्तु वैदिक मन्त्रों में यह नियम है कि कहीं-कहीं दूसरे काल में दूसरे काल का प्रयोग हो जाता है इस लिए यहाँ

वर्तमान काल का अर्थ न करके विधि का अर्थ 'जावे' या 'जाना चाहिए' यह किया गया।

इस आधे मन्त्र का संक्षेप में अर्थ यही है कि इस परम पावन अविमुक्त क्षेत्र को त्यागकर मोक्ष के लिए कहीं नहीं जाना चाहिए क्योंकि दूसरे क्षेत्र में मोक्ष होता ही नहीं।

तदिदमन्ये देवानां देवसदनम् सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तत्=तस्माद् देवानां देवयजनमिदमविमुक्तं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं=ब्रह्मलोकं मन्ये।

इस कारण विद्वान् लोग इस अविमुक्त क्षेत्र को देवों का पूजा-स्थान एवं स्थावर-जंगम भूतों का ब्रह्मलोक समझते हैं।

अत्र हि जन्तोः प्राणैरुत्क्रममाणस्यरुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे अत्र=अविमुक्ते, हि=प्रसिद्धौ, जन्तोः=चतुर्विधस्य जीवजातस्य, प्राणैरुत्क्रममाणस्य=प्राणैरुत्क्रान्ति कुर्वतः ('प्राणेषूत्क्रममाणेषु' इति केचित् पठन्ति)

इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर परित्याग कर प्राणों के द्वारा ऊपर की ओर जाते हुए चारों प्रकार के जीवों को भगवान रुद्र तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं। कुछ लोग "प्राणेषु उत्क्रममाणेषु" ऐसा पाठ भेद बताते हैं। उनके मत के अनुसार यह अर्थ होगा कि 'प्राण छूटने के समय', परन्तु इन दोनों पाठों में कुछ विशेष भेद नहीं।

रुद्र शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की गई है—

(१) रुद्रः—तापत्रयात्मकं संसारदुःखं=रुत्, दुखहेतुर्वा=रुत्। रुद्रं द्रावयतीति=रुद्रः।

संसार में तीन प्रकार के दुःख होते हैं-- १-आध्यात्मिक, २-आधिभौतिक और ३-आधिदैविक। इन्हीं सांसारिक दुःखों का नाम "रुत्" है। कुछ लोगों का कथन है कि रुत् का अर्थ दुःख नहीं किन्तु दुःख का हेतु है। इसी रुत् को जो दूर करते हों उन्हें 'रुद्र' कहते हैं। इस व्याख्या में स्मृति के दो वचन प्रमाण हैं--

रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा द्रावत्ययेप नः प्रभु।
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ॥

दुःख अथवा दुःख के कारण को रुत् कहते हैं। हम लोगों के उस रुत् को ये भगवान् शिव दूर करते हैं। इसलिए सज्जन विद्वान् लोग आदि कारण भगवान् शिव को रुद्र कहते हैं।

और भी--

अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम्।
ततः स्मृताभिधौ रुद्रशब्देनात्राभिधीयते ॥

जीवनकाल में प्राणी के सब अशुभों को दूर करते हैं और शरीर परित्याग करने पर मोक्ष देते हैं इसलिए भगवान् शिव का नाम रुद्र है।

(२) रुत्या = वेदरूपया धर्मादीन् बोधयति वा रुद्रः।

वेद की ध्वनि द्वारा जो धर्मादिकों का बोध करावे वे ही रुद्र हैं।

(३) रुत्या = प्रणवरूपया स्वात्मानं प्रापयतीति वा रुद्रः।

प्रणव अर्थात् ओंकार के गान के द्वारा जो अपने समीप तक जीव को पहुँचा दें वे ही रुद्र हैं।

(४) रोरूयमाणो द्रवति = प्रविशति मर्त्यानिति वा रुद्रः।

(ऋ० वे० ३।८।१०।३)

जो घोर शब्द करते हुए मनुष्यों में प्रवेश करते हैं उन्हीं का नाम रुद्र है।

(५) रोधिका बंधिका च शक्तिः = रुत्। तस्याः द्रावयिता भक्तेभ्य इति वा विग्रहः।

रोधिका और बंधिका ये दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। रोधिका मोक्ष के मार्ग में आवरण (परदा) डाल देती है और इस आवरण के कारण मोक्ष का मार्ग नहीं दिखाई देता। दूसरी बंधिका मोक्ष में विक्षेप डाल देती है और इस विक्षेप के कारण मोक्ष मिलना कठिन होता जाता है। मोक्ष में बाधा डालने वाली इन दोनों प्रकार की शक्तियों को भक्तों से दूर कर देनेवाले को रुद्र कहते हैं।

(६) रुत् शब्दं वेदात्मानं कल्पादौ ब्रह्मणे ददातीति वा रुद्रः।

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को वेदरूपी शब्द देने वाले को रुद्र कहते हैं। इसमें श्रुति प्रमाण है —

'यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इति श्रुतेः।

(श्वेता० ६–१८)

जो भगवान् परमात्मा ब्रह्माजी को वेद देते हैं। भगवान् रुद्र ब्रह्मा की सृष्टि कर उन्हें वेद देते हैं।

एवमादिभिः प्रकारैः बहुधा रुद्रशब्दो निरुच्यते।

ऊपर कहे गये भिन्न-भिन्न प्रकारों से रुद्र शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की जाती है।

तारकम् तारकः = प्रणवः। तारयतीति तारः स्वर्थकः प्रत्ययः संसार सागरादुत्तारकं = तारकं च तद् ब्रह्म इति तारकं ब्रह्म उच्यते।

ओंकार तारक है क्योंकि जो डूबते हुए का उद्धार करके उसे तार दें उसी को तारक कहते हैं। (तारक शब्द से "तार" शब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय हुआ है अर्थात् जो अर्थ तार शब्द का है वही अर्थ तारक शब्द का है।) अपार संसार सागर से तार देने वाले तारक ब्रह्म का उपदेश भगवान् रुद्र करते हैं। प्रणव अर्थात् ओंकार को ही विद्वान् लोग तारक ब्रह्म कहते हैं इसमें अनेक वेद वाक्य प्रमाण हैं।

"ओमितीदं ब्रह्म" इति श्रुतेः। (तै०उ० ११।८)

ओंकार ही ब्रह्म है अर्थात् ओंकार और ब्रह्म में कोई भेद नहीं।

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्" इति श्रुतेः।

(माण्डूक्योपनिषद् १)

ओम यही अक्षर सब कुछ है अर्थात् प्रणव ही के अन्तर्गत सब कुछ है। यही सर्वव्यापक ब्रह्म है।

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" इति भगवान् व्याचष्टे।

(भ० गीता ८।१३)

भगवान् ने गीता में भी कहा है कि ॐ यह एक अक्षर साक्षात् ब्रह्म है।

उपदिशति– येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षीभवति। येनोपदिष्टेन ज्ञानेनासौ जन्तुरमृतीभूत्वा (इत्यत्र अभूततद्भावेच्विः न भवति, स्वतः सिद्धत्वात्) अमृतोऽयमविद्यान्तर्हितो मर्त्यभावमापन्नो निवृत्ताज्ञानतत्कार्ये मोक्षीभवति।

भगवान शंङ्कर तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं। इस उपदेश से जन्तु को परम ज्ञान प्राप्त होता है और वह अपने यथार्थ रूप को

जानकर मुक्त हो जाता है। ('अमृतीभूत्वा' इस शब्द में अभूत तद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय नहीं है क्योंकि जीवात्मा तो पहिले से ही मुक्त रहता है, पहिले बद्ध हो पीछे ज्ञान से मुक्त हो जाय यह सम्भव नहीं। जो यथार्थ में मुक्त है वही मुक्त हो सकता है और जो यथार्थ में बद्ध है वह बद्ध ही रहेगा, उसका मुक्त होना असम्भव है।) यह जीव स्वभाव से ही अमृत एवं मुक्त है केवल अविद्यारूपी अन्धकार में पड़कर अपने को जीवन-मरण से मुक्त समझने लगता है। जब अज्ञान और उस अज्ञान का कार्य निवृत्त हो जाता है तब वह अपनी यथार्थ मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। मुक्त को ही मोक्ष मिलता है इस विषय में अनेक श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

(१) "मुक्त एव मुक्तो भवति"

जो स्वभाव ही से मुक्त है वही मुक्त हो सकता है।

(२) "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"

(बृह० उ० ४।४।६)

ब्रह्म होने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

(३) "विमुक्तश्च विमुच्यते"

जो मुक्त होता है वही मोक्ष पाता है।

तस्मात् = ततो हेतोरविमुक्तमेव निसेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चते = न त्यजेदामरणान्तिकम्। एवमेवैतद् याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिना पृष्टः सन्नेवमेवैतदवगन्तव्यमित्युवाच याज्ञवल्क्यः।

इस लिए अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी का ही सेवन करना चाहिए। इस पवित्र पुरी काशी को मरण पर्यन्त न छोड़े। देवगुरु बृहस्पति

के पूछने पर याज्ञवल्क्य ने अविमुक्त क्षेत्र के इस उत्तम रहस्य को बताया।

प्राणोत्क्रमणं न स्थावरविषयमिति चेत् न इत्याह--

कुछ लोगों का मत है कि जरायुज, अण्डज, स्वेद्ज इन तीन प्रकार के भूतों के प्राणों का आना जाना तो ठीक है पर वृक्ष, लता आदि स्थावर भूतों के प्राणों का उत्क्रमण सम्भव नहीं। इस मत के खण्डन करने के लिए श्रुतियों का प्रमाण देते हैं:-

"ओषधिवनस्पतयो यच्च किञ्च प्राणभृत्" इति श्रुते:-

श्रुति कहती है कि जड़ी, बूटी, वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं वे सब प्राणधारी भूत हैं।

यत् किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्, इति श्रुतेः।

[ऐ० उपनिषद् ५ खण्ड मन्त्र ३]

संसार में जितने प्राणी हैं चाहे वे चलने फिरने वाले हों, चाहे आकाश में उड़ने वाले हों और चाहे स्थावर हों सभी उस परमज्ञानस्वरूप ब्रह्म की शक्ति के द्वारा संचालित हैं और उसी ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में कोई भी वस्तु नहीं।

प्राणोत्क्रमणं जङ्गमेष्वभिव्यक्तं, स्थावरेष्वनभिव्यक्तमेतावानेव विशेषः।

प्राणों का पाञ्चभौतिक शरीर से निकलकर उड़ जाना जंगम भूतों में तो साफ-साफ प्रतीत होता है परन्तु स्थावर भूतों में प्रकट

रूप से नहीं जान पड़ता, यही इन दोनों प्रकारों के भूतों में भेद है। कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि चलने फिरने वाले भूतों के शरीर से जब प्राण निकलने लगते हैं उस समय यद्यपि प्राण वायु निकलती हुई दिखाई नहीं देती पर यह पता अवश्य लग जाता है कि अब प्राण निकल रहे हैं, स्थावरों के प्राणों के निकलने के समय इस बात की प्रतीति नहीं होती।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः"

प्राणाभिव्यक्त्यभिप्रायं प्राणित्वप्रतिपादनपरम् इति मनावं वाक्यमपि।

ऊपर बताये गये चारों प्रकारों के भूतों में प्राणी श्रेष्ठ होते हैं यह मनु भगवान् का वचन है। इस वचन में प्राणी शब्द से केवल जंगम जीव, कृमि, कीट, पतंग आदि लिये गये हैं इससे यह नहीं समझना चाहिए कि स्थावर भूतों के लिए प्राणी शब्द का प्रयोग नहीं होता। यहाँ प्राणी शब्द का प्रयोग ऐसे जीवों के अर्थ में हुआ है जिनमें प्राणों का होना प्रकट रूप से मालूम पड़ता है अर्थात् जो जीव चलते फिरते दिखाई देते हैं। स्थावर और जंगम ये सब प्राणी अर्थात् सजीव हैं इस बात की पुष्टि के लिए कुछ कारण नीचे दिये जाते हैं:--

१. षड्भावविकारत्वाविशेषात्।

संसार में जितने भाव पदार्थ हैं सबों में छह विकार होते हैं। पहिले तो उस पदार्थ की उत्पत्ति होती है तब उसकी सत्ता संसार में होती है, फिर उसके अवयवों की वृद्धि होती है। तदनंतर उसमें परिणाम होना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रमशः क्षीण होने

लगता है और अन्त में उसका नाश हो जाता है अर्थात् फिर इस संसार में उसी रूप में दिखाई नहीं देता। ये छहों विकार जिस प्रकार मनुष्य, पशु, पत्ती आदि जंगमों में होते हैं उसी प्रकार वृक्ष, लता आदि स्थावर आदि पदार्थों में भी होते हैं। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्थावर और जंगम सभी सजीव हैं।

२. प्राणित्वाविशेषात्,

प्राणित्व धर्म स्थावर और जंगम दोनों में है। जिस प्रकार कीट, पतंग आदि जंगमों में प्राण हैं उसी प्रकार वृक्षादि स्थावरों में भी हैं, जिस प्रकार कीट, पंतग आदि उत्पन्न होकर बढ़ते और तब क्रमशः क्षीण होते हुए मर जाते हैं उसी तरह वृक्षादि की उत्पत्ति वृद्धि और नाश का भी क्रम है। अतः सभी स्थावर और जंगम प्राण वाले माने गए हैं।

३. स्थूलकारणोपाधिमत्वाविशेषात्

सभी स्थावर एवं जंगम व्यक्तियों का शरीर स्थूल कारण अर्थात् पञ्चभूतों से बना है। पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकास इन पाँच भूतों से मनुष्य के भी शरीर बने हैं और इन्ही पाँचों भूतों से वृक्षादि स्थावर वस्तुओं के शरीर बने हैं। इस लिए स्थावर और जंगम दोनों में प्राण हैं।

४. जन्तुशब्दत्वाविशेषात्,

स्थावर और जंगम दोनों ही जन्तु शब्द से बोधित होते हैं अर्थात् जन्तु कहने से दोनों का बोध होता है। इस कारण दोनों ही जीवधारी हैं।

५. संसारचक्रे भ्राम्यमाणत्वविशेषात्

इस संसार चक्र में स्थावर और जंगम सभी चक्कर लगाते हैं। कभी ऊँची योनि में जन्म लेते हैं और कभी नीची योनि में जा पड़ते हैं। यह भिन्न-भिन्न योनियों में जाना स्थावर जंगम सभी के लिए अनिवार्य है। इस अपार संसार में सभी ऊँची-नीची योनियों में जन्म लेना पड़ता है इसमें स्मृति प्रमाण है :-

स्थाल्यां विपच्यमानायां यवादीनां यथैव हि।
सुराणां नारकाणां च तथोर्ध्वाधः प्रवर्तनम्॥

जिस प्रकार बटलोही में यव, चावल आदि अन्न चुरते समय ऊपर नीचे आया-जाया करते हैं उसी प्रकार सभी जीवों का, चाहे वे स्वर्ग लोक में रहने वाले हों चाहे नरक-लोक में रहने वाले हों, स्वर्ग और नरक में आना जाना लगा रहता है।

अत्राविमुक्ते स्थावरजङ्गमाश्च सर्वे प्राणिनो मोक्षेऽधिक्रियन्ते संकोचे कारणाभावात्।

इस अविमुक्त क्षेत्र काशीपुरी में स्थावर और जंगम सभी प्राणी मोक्ष के अधिकारी होते हैं। प्राणिमात्र को यहाँ मोक्ष पाने का अधिकार है। जंगमों को ही मुक्ति मिलती हो स्थावरों को नहीं, इस प्रकार का संकोच करने का कारण नहीं जान पड़ता और न इसमें कोई प्रमाण ही मिलता है, इसलिए यह वचन बहुत ही ठीक है :-

अभ्यस्य ब्रह्मसदनं श्रुत्या तात्पर्ययुक्तया।
सर्वस्य बोध्यते जन्तोर्मुक्तिरेकेन जन्मना॥
ते ब्रह्मलोकवाक्येन ब्रह्मलोकगता जनाः।
यथा सर्वे विमुच्यन्ते तथैवात्रापि जन्तवः॥

तत्र ब्रह्मोपदेष्टा स्यादत्र साक्षान्महेश्वरः।
तस्यापि परमाचार्यो "योब्रह्माणम्" इति श्रुतेः ॥

जब जीव अपने पुण्यों के प्रताप से ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है उस समय ज्ञान से युक्त वेद के वचनों से जन्तुमात्र को एक ही जन्म में परब्रह्म का बोध करा दिया जाता है तब उसे मोक्ष मिल जाता है।

ब्रह्मलोक में पहुंचकर वे जीव ब्रह्मलोक के उपदेश सुनकर जिस प्रकार मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार काशीपुरी में भी मुक्त होते हैं।

वहाँ पर ब्रह्मा जी उपदेश देते हैं और यहाँ पर तो साक्षात् महेश्वर उपदेश देते हैं जो कि ब्रह्माजी के भी आचार्य हैं जैसा कि "यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इस श्वेताश्वतर उपनिषद् के (६-८) मन्त्र में कहा गया है।

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽव्यक्तः आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ? स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्त उपास्यो य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति। सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति ? वरणायां नास्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति। का वै वरणा का च नाशीति ? सर्वान् इन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति। सर्वान् इन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति। कतमं चास्य स्थानं भवतीति ? भ्रुवोर्घ्राणस्य च या सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवतीति। एतद्वै सन्धि सन्ध्यां ब्रह्मविद उपासते इति।

सोऽविमुक्त उपास्यः इति सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे। यो वैतदेवं वेदेति।

[जाबालोपनिषद् २]

(अब जाबालोपनिषद् के दूसरे मन्त्र की व्याख्या ग्रन्थकार करते हैं)

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा कथमहमिम विजानीयामिति ?

महर्षि अत्रि ने परम-ज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि से पूछा कि हे महाराज ! इस अनन्त और अव्यक्त आत्मा को मैं कैसे जान सकता हूँ ? कहने का तात्पर्य यह कि इस सर्वव्यापी आत्मा का न तो आदि है और न अन्त और न यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई ही देती है। ऐसी अवस्था में यह आत्मा कैसे जानी जा सकती है ? इस प्रश्न पर याज्ञवल्क्य महर्षि उत्तर देते हैं—

"सोऽविमुक्ते उपास्यः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः।

उस आत्मा की उपासना अविमुक्त रूप में करनी चाहिए।

"सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठितः" इति अत्रिः पप्रच्छ।

महर्षि अत्रि ने पूछा कि आप जिस अविमुक्त के विषय में कहते हैं वह कहाँ है ?

"वरणायामस्यां च मध्ये प्रतिष्ठितः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः।

(वरणायाम्, अस्याम् इत्यत्र विभक्तिव्यत्ययेन षष्ठी ज्ञातव्या)

परम विद्वान् याज्ञवल्क्य ने कहा कि अविमुक्त क्षेत्र असी और वरणा के बीच में है। ("वरणायाम्" और "अस्याम्" इन दोनों शब्दों में षष्ठी के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग हुआ है) "का च वरणा भवति का च असी" इति अत्रिः पप्रच्छ।

ऋषिवर्य अत्रि ने प्रश्न किया कि हे तपोनिधे ! आप किसे वरणा कहते हैं और किसे असी ?

सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति 'वरणा' भवति, सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् अस्यति तेन "असी" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः ।

याज्ञवल्क्य ने अत्रि मुनि के पूछने पर कहा कि पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन के द्वारा किये जाने वाले सभी दोषों को रोक दे अर्थात् इन इन्द्रियों को वे काम न करने दे उसका नाम "वरणा" है । इन्द्रियों के द्वारा किये गये पापों को जो फेंक दे अर्थात् जीव को उन पापों से मुक्त कर दे उसी का नाम 'असी' है । वरणा तो जीव को नवीन पाप करने से रोकती है और असी उसके पूर्वकृत पापों को दूर कर देती है ।

(सर्वान्, इन्द्रियकृतान् इत्युभयत्र सर्वाणि इन्द्रियकृतानि पापानि इति लिङ्गव्यत्ययो बोध्यः । वारयति=निवारयतीति वरणा । अस्यति=निरस्यतीति असिः । सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान्नाशयतीति नाशीति केचित् पठन्ति । स्पष्टमन्यत् ।

(सर्वान् और इन्द्रियकृतान् ये दोनों शब्द पाप के विशेषण हैं और पाप शब्द नपुंसक लिङ्ग का है इसलिए दोनों को पुलिङ्ग से बदलकर नपुंसक लिङ्ग में कर लेना चाहिए ।)

कुछ विद्वान् असि शब्द के जगह नाशी शब्द मानते हैं उनके अनुसार यह अर्थ होगा कि जो इन्द्रियों द्वारा किये गये सब पापों का नाश करे । "कतमच्चास्याः स्थानं भवति" इति अत्रिः पप्रच्छ ।

महर्षि अत्रि ने प्रश्न किया कि इस पूर्वोक्त वाराणसी का स्थान कहाँ है ?

"भ्रुवोर्घ्राणस्य यः सन्धिः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः। अत्र घ्राण शब्देन घ्राण वायुप्रचारकं घ्राणमूलमुच्यते।

ज्ञाननिधि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि दोनों भौंहें और घ्राण का जो मिलने का स्थान है उसी का नाम वाराणसी है। यहाँ घ्राण का अर्थ है घ्राणमूल जहाँ से घ्राणवायु उठती है। दोनों भौंहें और नासिका का सबसे ऊपरी हिस्सा ये तीनों जहाँ जाकर मिलते हैं उसी स्थान का नाम वाराणसी है। इसमें आत्मा रूपी प्राण को रखने से परम पद प्राप्त होता है। इसके अन्य प्रमाण दिये जाते हैं।

वाराणसी भ्रुवोर्मध्यमविमुक्तं तयो भ्रुर्वः।
अध्यात्मेवातिदिष्टं तद् भ्रुवोर्घ्राणस्य चान्तरम्॥

दोनों भौंहें और नासिका के ऊर्ध्वभाग के मिलने की जगह का नाम वाराणसी या अविमुक्त है यह आध्यात्मिक काशी है। इस आध्यात्मिक काशी में निवास करने से जीव को मुक्ति मिल जाती है अर्थात् आध्यात्मिक पुरी में जो कि सब प्राणियों के शरीर ही में विद्यमान है, चित्त दृढ़ करने से जीव को मुक्ति मिलती है।

"भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य" इति भगवद्वाक्यमपि।

दोनों भौहों के बीच में प्राणों को चढ़ाकर... ... ... ऐसा कहकर भगवान् ने भी पूर्वोक्त कथन का प्रतिपादन किया है।

अविमुक्ते प्राणान् परित्यजतः परब्रह्मप्राप्तिं प्रतिपादयति।

अविमुक्त क्षेत्र काशीपुरी में प्राण छोड़ने वाले को परब्रह्म की प्राप्ति होती है इसका प्रतिपादन आगे के श्लोकों द्वारा किया जाता है।

दिवः परस्य लोकस्य सन्धि सन्ध्येति चोच्यते ।
सैव सन्ध्याऽविमुक्ताख्या तत्रेश्वरमुपासते ॥

सगुण ब्रह्मवेत्तारस्तेषां ज्ञानं स ईश्वरः ।
आचष्टे चाविमुक्ताख्ये य एतस्यैव सेवकाः ॥

आकाश और स्वर्गलोक जहाँ आकर मिलते हैं उसी सन्धि स्थान का नाम सन्ध्या है । उसी सन्ध्या का नाम अविमुक्त है । सगुण ब्रह्म के जानने वाले ज्ञानी लोग वहाँ ईश्वर की उपासना करते हैं । जो इसी अविमुक्त की मनसा, वाचा और कर्मणा उपासना करते हैं उन्हें इसी क्षेत्र में ईश्वर ज्ञान देते हैं और उनकी संसार सागर से मुक्ति हो जाती है ।

जीवेश्वरविभागश्च प्रसङ्गात् प्रतिपाद्यते ।
प्रकृतस्योपयोगित्वात् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥

प्रसङ्ग आ पड़ने के कारण और इस ग्रन्थ के विषय में उपयोगी होने के कारण शास्त्रों में बताई गई रीति से जीव क्या वस्तु है, ईश्वर क्या वस्तु है और इन दोनों में क्या भेद है इन सब बातों का प्रतिपादन किया जाता है—

सृष्टेश्च प्राक् सच्चिदानन्दबोधरूपमखण्डमद्वितीयं परं ब्रह्मैकमेव जागर्ति नान्यत् किञ्चिदस्ति । तथा च श्रूयते ––

संसार की सृष्टि होने के पहिले सत्, चित्, आनन्द और ज्ञानस्वरूप अखण्ड अद्वितीय एक परब्रह्म ही था और इसके अतिरिक्त स्थावर जंगम कुछ भी नहीं था । इसमें अनेक वेद–वचन प्रमाण हैं––

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ।
नान्यत् किञ्चन मिषत्" इति ॥
(ऐतरेयोपनिषत् १अ० १खं०)

सृष्टि काल के पूर्व केवल एक आत्मा ही थी इसके अतिरिक्ति और कुछ भी नहीं दिखाई देता था। आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु का व्यापार दिखाई नहीं देता था।

"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इति च ।
(छान्दोग्य० ६-२-१)

महर्षि आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश देते हैं कि पुत्र! यह भिन्न-भिन्न नाम और रूप धारण करने वाला जगत् सत् ही था अर्थात् जिस प्रकार इस समय जगत् में अनेक विकार दिखाई देते हैं वैसे विकार सृष्टि के आदि में नहीं थे। उस समय यह जगत ईश्वराकार ही था। उस समय एक अद्वितीय ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। सृष्टि होने पर भिन्न-भिन्न नाम-रूप दिखाई देने लगे।

तन्मायया द्वैरूप्यं प्रतिपद्यते। माया च कार्यकारणरूपेण द्विरूपा। कारणोपाध्युपहितं यच्चैतन्यं तत् सर्वज्ञं सर्वशक्ति सर्वेश्वरं जगत् सृष्टिस्थिति प्रलय कारणं भवति। कार्योपाध्युपहितं यच्चैतन्यं तज्जीवसंज्ञमल्पशक्ति संसारि परतंत्रं भवति। कार्योपाधिषु जीवशरीरेषु कारणोपाधीश्वरस्य कार्येषु कारणानुवृत्तेरधिष्ठातृत्वमुपपद्यते।

वही सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर अपनी ही माया से दो प्रकार का हो जाता है। माया भी दो प्रकार की होती है एक तो कार्य-

रूप और दूसरी कारणरूप । कारणोपाधि से युक्त अर्थात् कारण स्वरूप चैतन्य सर्वज्ञ होता है (वह त्रिकाल और त्रिलोक की बात जानता है) सर्वशक्तिमान् होता है, सचराचर जगत् का स्वामी होता है । संसार की सृष्टि, पालन और प्रलय वही करता है ।

कार्योपाधि से युक्त अर्थात् कार्यस्वरूप चैतन्य को जीव कहते हैं। इस जीव में वहुत ही संकुचित शक्ति है । यह वार-वार शरीर का परित्याग करता है । यह स्वाधीन नहीं है और इसे उस परम शक्तिमान् की इच्छानुसार कार्य करना पड़ता है । यह सिद्धान्त है कि कार्य में उसके कारण की अनुवृत्ति अवश्य रहती है अर्थात् कार्य में कारण की प्रधानता होती है । इसी सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध होता है कि कार्योपाधि वाले जीवों के शरीर का अधिष्ठाता कारणोपाधि वाला ईश्वर है । कहने का तात्पर्य यह है कि सभी जीवों का आधिष्ठता एक ईश्वर है ।

जीव और ईश्वर ये दो वस्तु हैं और इन दोनों में कितना अन्तर है, आगे दी गई श्रुति से अच्छी तरह जाना जा सकता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व-
त्त्यनश्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(श्वेता० ४-६, मुण्डकोपनिषद् ३-१)

जीव और ईश्वर दो पक्षी हैं । वे सदा एक साथ रहते हैं, इन दोनों की अभिव्यक्ति का कारण एक वही परब्रह्म है । ये दोनों फल के उपभोग के लिए शरीर रूप वृक्ष का आश्रय करके निवास

करते हैं । इन दोनों में से पहला अर्थात् जीव अपने शुभ अशुभ कर्मों से उत्पन्न होने वाले सुखद एवं दुःखद अनेक प्रकार के फलों को अविवेक के वशीभूत होकर भोगता है और दूसरा अर्थात् नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वाभाव सर्वस्व ईश्वर किसी भी फल का जीव के समान उपभोग नहीं करता, वह केवल द्रष्टा और प्रेरयिता है, दर्शन मात्र ही उसका उपयोग है ।

पर्यायत्वमविद्याया मायायाश्च तथाऽपरे ।
प्रयोगेषु प्रसिद्धत्वात् मन्यन्ते लोकवेदयोः ॥

कुछ विद्वान् लोग माया और अविद्या को पर्याय-वाचक शब्द समझते हैं । उनका कहना है कि माया और अविद्या ये दो वस्तु नहीं किन्तु एक ही वस्तु हैं क्योंकि लोक और वेद दोनों में उनका एक ही अर्थ में प्रयोग होता है ।

शक्तिद्वयमविद्यायाः कल्पयन्ति च ते ततः ।
स्वाश्रयामोहिनी काचिन्मोहिनीमपरामपि ॥

विद्वान् लोग अविद्या की दो शक्तियाँ मानते हैं । एक शक्ति तो अपने आश्रम को मोहित नहीं करती और दूसरी अपने आश्रम को मोहित कर लेती है । पहिले अमोहिनी शक्तिवाली अविद्या का आश्रय ईश्वर है, उस ईश्वर के ऊपर अविद्या का असर नहीं होता । दूसरी का आश्रय जीव है, इस जीव के ऊपर अविद्या का पूरा असर होता है और माया जाल में फँस जाता है ।

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रं ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥

(सूत संहिता १।१०)

उस सर्वशक्तिमान् परब्रह्म से पाँच प्रकार की अविद्या प्रकट हुई—तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र ।

ब्रह्मदेव मनुष्येषु पशुषु स्थावरेषु च !
पञ्चधा या विमुक्तात्मा वर्तते चिदपाश्रया ॥

पितामह ब्रह्मा में, सभी देवों में, मनुष्यों में, पशुओं में और स्थावरों में यह पाँच प्रकार की अविद्या वर्तमान है ।

तामविद्यां तथा भूतां भगवान् परमेश्वरः ।
संहरत्युदयेनैव सहस्रांशुस्तमो यथा ॥

इस पाँच प्रकार की अविद्या को भगवान् परमेश्वर ज्ञान के उत्पन्न होने पर उसी प्रकार हटा लेते हैं जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को दूर कर देते हैं ।

'जन्तोरत्र हि प्राणैरुत्क्रममाणस्य रूद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे' इत्यस्यायमर्थः । वाराणसीमध्यवर्तिनां मनुष्य व्यतिरिक्तानां जङ्गमानां स्थावराणां च वाराणसीप्राप्तिस्थितिप्रलयकारणानां पुण्यकर्मणां भूयस्त्वात् प्रारब्धेन शरीरेण क्रियमाणयोः पुण्यपापयोरसम्भवात् प्रारब्धस्य कर्मणो भोगादेव परिक्षयात प्राणप्रयाणसमये सर्वज्ञः सर्व शक्तिस्सर्वान्तर्यामी परमकारुणिकः परमेश्वरः स्वतः सिद्धमात्मरूपम् अविद्याप्रहाणादभिव्यञ्जयति = गमयतीत्यर्थः । तथा च श्रूयतेः—

परमपावनी वाराणसी पुरी में निवास करने वाले मनुष्यों से भिन्न जंगम और स्थावर भूतों को काशी की प्राप्ति, काशी में स्थिति और काशी में शरीर परित्याग करने के कारण बहुत अधिक पुण्यों का लाभ होता है, उनके प्रारब्ध शरीर से किये गये

पुण्य-पाप फलाधायक होते नहीं और उनके प्रारब्ध कर्मों का भोग ही से नाश हो जाता है। तदनन्तर प्राणों के निकलने के समय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परम कृपालु परमेश्वर जीव की अविद्या को दूर करके अपने स्वतः सिद्ध रूप को प्रकट कर देता है। इसका प्रमाण वेद में मिलता है—

योदेवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको यो रुद्रोमहर्षिः। हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति।

रूद्र नामक परमेश्वर सभी देवताओं से पूर्व के हैं अर्थात् इन्द्र, वरुण आदि सभी देवताओं की सृष्टि पीछे हुई। आदि में यही एक थे। संसार के जितने स्थावर जंगम हैं उन सबों में इनका अधिक महत्व है। ये सर्वज्ञ हैं और उनके महत्व का अन्त नहीं। हिरण्यगर्भ जिनसे कि इस सचराचर जगत् की सृष्टि हुई है, इन्हीं के सामने उत्पन्न हुए हैं। ऐसे परमेश्वर हम लोगों को कल्याण एवं मोक्ष देनेवाली बुद्धि दें।

ईश्वरस्य सर्वशक्तिमत्वं श्रूयतेः——

ईश्वर सब सर्वशक्तियों से सम्पन्न हैं इसका प्रमाण श्वेताश्वतर उपनिषद् में दिया गया है।

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते,
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेताश्वतर ६—८)

उन महेश्वर परमेश्वर का नाम न तो समष्टि-व्यष्टि स्वरूप शरीर है और न समष्टि-व्यष्टि स्वरूप करण अर्थात् अन्तः करण है। वे अद्वितीय सुख का अनुभव करते हैं इस लिए उनके बराबर संसार में कोई नहीं है। उनसे बड़ा होना तो असम्भव ही है। श्रुतियों में और स्मृतियों में उनकी शक्ति सबसे बढ़कर बताई गई है और वह अनेक प्रकार की है अर्थात् अनेक प्रकार के कार्यों को उत्पन्न करती है। उन परमेश्वर में सम्पूर्ण विषयों के जानने की शक्ति स्वाभाविक है, अर्थात् वे त्रिकालज्ञ एवं सर्वज्ञ हैं।

(मनुष्य योनि से भिन्न योनियों में उत्पन्न जंगमों और स्थावरों को किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है और किस प्रकार उन्हें मुक्ति मिलती है यह तो पहिले कह चुके हैं। अब भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को पहुँचे हुए मनुष्यों को किस प्रकार मोक्ष मिलता है यह आगे बताया गया है।)

मनुष्येषु ये जीवन्मुक्तास्तेषां प्राणोत्क्रमणां नास्ति।
"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते" इति श्रुतेः।
(वृहदारण्यक ४।४।६)

मनुष्यों में जितने जीवन्मुक्त हैं उनके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। इस विषय का प्रतिपादन वेद ने किया है। वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि "जीवन्मुक्त पुरुष के प्राण ऊपर नहीं जाते किन्तु यहीं लीन हो जाते हैं"।

त तत्र क्वापि निवसन्तः प्रारब्धकर्मक्षये विदेहकैवल्यं प्राप्नुवन्ति।

वे जीवन्मुक्त पुरुष चाहे कहीं भी रहें परन्तु प्रारब्ध कर्मों के क्षय होते ही विदेह कैवल्य को प्राप्त हो जाते हैं।

ये च सगुणब्रह्मोपासकाः ये च केवलं फलनिरपेक्षाः सन्तः कर्मानुष्ठातारश्चोपासकाः, ये च केवलं निरपेक्षाः सन्तः श्रुतिस्मृत्युक्त-स्ववर्णाश्रमोचितकर्मानुष्ठातारस्तेषां चत्वारिंशत् संस्कारैरशेषैरसंस्कृतत्वेपि अष्टभिरात्मगुणैर्युक्तानां प्राणप्रयाणसमये पूर्वोक्तन्यायेन भगवान् परमेश्वरस्तारकं ब्रह्मोपदिशति ।

जो मनुष्य सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं, जो मनुष्य धार्मिक कृत्य करते रहते हैं और भगवान् की उपासना भी किया करते हैं, परन्तु इन सत्कर्मों से उत्पन्न होने वाले फलों की कुछ भी चाह नहीं करते और जो किसी प्रकार की चाह न रखते हुए भी श्रुति-स्मृति में बताये गये वर्ण और आश्रम के अनुकूल कर्मों को करते हैं, ऊपर बताये गये इन तीन प्रकार के मनुष्यों को चाहे उनके चालीसों संस्कार हुए हों या नहीं, परन्तु आत्मा के आठ गुणों से युक्त होने के कारण प्राण जाने के समय पहिले बताये गये नियम के अनुसार ही भगवान् परमेश्वर तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि जो निर्गुण ब्रह्म के उपासक नहीं भी हैं और जिन्हें पूर्ण ब्रह्मज्ञान नहीं है परन्तु किसी भी कर्म के फलों के भोगने की इच्छा न रखकर श्रुतियों और स्मृतियों में बताये गये नियमों का पालन करते हुए सत्यकर्म किया करते हैं उन्हें भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर काशीपुरी में प्राण छोड़ते समय तारक ब्रह्म का उपदेश देकर मुक्त कर देते हैं।

परन्तु जो लोग इन पूर्वोक्त नियमों का भी पालन नहीं करते केवल काशीपुरी में निवास मात्र करते हैं उनको भी मोक्ष मिलता है इसी का प्रतिपादन आगे की पंक्तियों में किया जाता है :—

अन्येषामप्यशेषाणाम् गंगावगाहनदर्शनाभ्यां यज्ञदानतपोभिश्च यादृच्छिकैः पुराकृतैः कर्मभिः सुकृतैः

"उषरः पुण्यपापानां धन्या वाराणसीपुरी"

"इदं प्रिये क्षेत्रमतीव मे प्रियं संसारजीवोषरमूषराणाम्"

इति वचनाभ्यामूषरत्वेन प्रसिद्धक्षेत्रप्रभावेण च नष्टावशिष्टपापकर्मणः काम्यस्य पुण्यकर्मणो मुक्तिरेकेन जन्मना इति मुक्तेरवश्यम्भावित्वात् ।

पहिले कहे गये जीवन्मुक्त आदि से अतिरिक्त सभी साधारण काशी निवासियों के परमपुण्यसलिला भगवती गंगा में स्नान करने से तथा उनके दर्शन से, यज्ञ, दान और तप करने से, संयोगवश पूर्व में किये गये पुण्य कर्मों के आचरण से तथा सभी पाप-पुण्य के लिए उषर भूमि के समान इस काशी क्षेत्र के प्रभाव से सभी बचे हुए पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं और यही दशा काम्य कर्म और पुण्य कर्मों की भी होती है।

इस नगरी में किये गये पाप कर्मों का न अशुभ फल होता है और न पुण्य कर्मों का शुभ फल। शास्त्र में कहा गया है कि "यह वाराणसी नाम की नगरी धन्य है क्योंकि यह क्षेत्र पाप और पुण्य कर्मों के लिए ऊषर भूमि सदृश है। अर्थात इसमें किये गये पाप और पुण्यों की फल देने वाली शक्ति नष्ट हो जाती है।" यही बात श्री भगवान् शङ्कर पार्वती जी से कहते हैं कि "हे प्रिये ! यह काशी क्षेत्र मुझे बहुत प्यारा लगता है, इसमें निवास करने वाले सभी जीवों के कर्म उसी प्रकार फल देने में असमर्थ होते हैं जिस प्रकार की ऊषर भूमि में बोए गये बीज।" कहने का तात्पर्य यह है

कि काशी पुरी में चाहे पुण्य कर्म किये जावें चाहे पाप कर्म, परन्तु उनमें से एक का भी फल नहीं मिलता, वे सब काशी में शरीर त्याग करते ही भैरवी यातना भोगने पर भस्मीभूत हो जाते हैं और इसी कारण एक ही जन्म में जीव काशी में मर कर मुक्त हो जाता है।

एक जन्म में मुक्ति मिलने का प्रमाण दिया गया है —

प्रारब्ध एव शरीर भोक्तव्यत्वोपपत्ते

"अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते"

इति वचनात् काश्यां कृतयोः पुण्यपापयोरुत्कटत्वात् वर्तमान एव शरीरे भोक्तव्यनियमाच्चानयोः पुण्यपापयोः फल दानाय।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति"

(भ० गी० १८—६१)

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"

(श्वेता० ४—१०)

इति वचनात मायावी परमेश्वरः प्राणप्रयाणसमयात् पूर्वक्षणेनैकेनानेककालीनेष्टानिष्टकर्मफलोपभोययोग्यशरीरान्तराणु प्रवेशंमाययंत्रोद्भाव्य इष्टानिष्टान् स्वप्नकल्पान् भोगान् अनुभाव्य पश्चात् पूर्वोक्तन्यायेन तारकं ब्रह्मोपदिशातीत्यवश्यमेवाभ्युपगन्तव्यम्।

कर्मों के फलों का भोग शरीर प्राप्त होने पर ही हो सकता है, परन्तु जो बहुत ही उत्कट पाप और पुण्य होते हैं उनका फल यहीं भोगना पड़ता है ऐसा वचन है। काशी में किये गये पाप और पुण्य बड़े ही उत्कट होते हैं इसमें सन्देह ही नहीं। ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं ऐसा गीता का कथन है।

प्रकृति को माया कहते हैं और उस प्रकृति के अधिष्ठाता महेश्वर को मायावान् अथवा मायावी कहते हैं वे ही सबके हृदय में निवास करने वाले मायावी भगवान् प्राण जाने के एक क्षण भर पहिले अपनी माया के बल से चिरकाल में किये गये शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के भोगने के योग्य एक दूसरे शरीर में जीवात्मा का प्रवेश कराकर उसे स्वप्न के समान सुखद और दुःखद भोगों का अनुभव कराकर पीछे पहिले बताये गये नियम से तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं यह समझ लेना चाहिए।

सूत संहिता का वचन है कि –

ईदृशी परमा निष्ठा गुरोः साक्षान्निरीक्षणात्।
कर्मसाम्ये त्वनायासात् सिद्धत्येव न संशयः॥

आदि गुरु भगवान् शिव के साक्षात् दर्शन करने से और तारक मन्त्र के उपदेश के द्वारा कर्म का नाश हो जाने पर वह परम ज्ञान विना किसी प्रयास के हो जाता है और जीव को मोक्ष मिल जाता है।

कर्मसाम्ये कर्मणोः सुकृतदुष्कृतयोः फलभोगेन साम्ये सतीत्यर्थः। अन्यथा प्रत्ययुक्तश्रुतिविरोधात् प्राणैरुत्क्रममाणस्येति वर्तमानार्थविहितप्रत्ययसामान्यात् "मुक्तिरेकेन जन्मना" इति वचनात् अत्रैव मृतमात्राणामिति मात्रच् प्रत्ययप्रयोग प्राबल्यात्।

फलभोग की दृष्टि से जब पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्म बराबर हो जाते हैं और उनमें फल भोगने की शक्ति नहीं रह जाती उस समय कर्मसाम्य होता है और तभी जीव को अनायास मुक्ति मिल जाती है। एक तो श्रुति का कथन है कि देखते-देखते

भगवान् शङ्कर तारक मन्त्र के उपदेश के द्वारा जीव को मुक्त कर देते हैं, दूसरे 'प्राणैरुत्क्रममाणस्य' इस वचन में वर्तमान काल का बताने वाला शानच् प्रत्यय लगा है जिससे साफ जान पड़ता है कि प्राण निकलते समय ही मुक्ति मिलती है। तीसरे 'मृतमात्राणाम्' इसमें मात्रच् प्रत्यय के प्रयोग करने से जान पड़ता है कि मरते ही मुक्ति मिलती है। इन तीनों बातों से जान पड़ता है कि काशी में शरीर परित्याग करने के अनन्तर ही कर्मसाम्य हो जाता है।

"न चातो व्यवधानवन्ति" इति वाराणसीमुक्तेः कालान्तरेण व्यवधानाश्रवणात्। श्रुत्यर्थगुणानमन्येषामपि वचनानां भूयसां सम्भवात्।

काशी में मृत्यु पाने से मुक्ति में व्यवधान नहीं होता अर्थात् प्राण छूटते ही उसी क्षण मुक्ति मिल जाती है। इस वचन से साफ जान पड़ता है कि वाराणसी में मरने से किसी भी कर्म के फलों को भोगने के लिए जन्म नहीं लेना पड़ता किन्तु तत्क्षण मोक्ष मिल जाता है। वेद में कहे गए इस विषय के प्रतिपादन करने वाले और भी अनेक वचन होंगे जिनसे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि काशी में शरीर परित्याग करने से एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता।

इस प्रकार की अनेक कल्पनायें की जा सकती हैं जिनमें श्रुति स्मृति के प्रमाण मिलते हों कहा गया है कि—

प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपि।
वालाग्रशतभागोऽपि न कल्प्यो निष्प्रमाणकः॥

जिनके प्रमाण मिलते हों ऐसे हजारों अदृष्ट विषयों की कल्पना की जा सकती है परन्तु जिसमें प्रमाण न मिलता हो उसकी लेश मात्र भी कल्पना नहीं करनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वर्ग, नरक आदि यद्यपि अदृष्ट विषय हैं, किसी मनुष्य ने इन्हें अपनी आखों से देखा नहीं है, परन्तु शास्त्र में इनके प्रमाण मिलते हैं इसलिए इनके विषय में जितनी कल्पना करनी हो की जा सकती है। परन्तु जिसके विषय में श्रुति, स्मृति, पुराण आदि भी आप्त ग्रन्थ का प्रमाण न मिलता हो उसके विषय में कभी कुछ भी अपनी इच्छा के अनुसार कल्पना नहीं करनी चाहिए। यह विषय आगे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा।

"पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्त" इति वाक्ये रात्रिभोजनमन्तरेण पीनत्वानुपपत्ते तथा रात्रिभोजनं कल्प्यते तथैवात्रापि श्रुति स्मृत्ययन्यथानुपपत्या मुक्तिरेकेन जन्मना जन्तोरेष्टव्या।

'हृष्ट-पुष्ट देवदत्त दिन में कुछ भी नहीं खाता' इस बात के कहने से साफ मालूम हो जाता है कि वह रात्रि को भोजन करता है, यदि वह रात के समय भी भोजन न करता होता तो वह मोटा ताजा कभी नहीं हो सकता। इस अर्थापत्ति प्रमाण से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि वह अवश्यमेव रात्रि के समय भोजन करता होगा। इसी प्रकार श्रुति और स्मृति के अनेक ऐसे वचन हैं जिनका इसके सिवा और कोई समुचित अर्थ हो ही नहीं सकता कि काशी में शरीर परित्याग करने से एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है।

जाग्रत्स्वप्नयोः कर्मफलभोगे न कश्चिद्विशेषोऽस्ति। "तस्य त्रय आवसथास्त्रय स्वप्नाः" इति श्रुतेः॥

(ऐत० १ अ० ३ खं०)

मायाविमोहितानां क्षणेनैकेन विग्रहान्तरपरिग्रहा विचित्राश्चानुभवाः श्रूयन्ते उक्तं च वासिष्ठे—

जीव के जीवन काल में तीन अवस्थाएं होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में कर्मों के फलों का भोग होता है उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी कर्मों के फलों का भोग हो जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में कर्मफलों का भोग समान रूप से होता है दोनों में कोई भेद नहीं। इसमें ऐतरेयोपषिद् प्रमाण है।

उस सृष्टि करने वाले ईश्वर के रहने के लिए तीन स्थान हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था में उसका निवास दाहिनी आँख में, स्वप्नावस्था में मन के भीतर और सुषुप्ति के समय हृदयाकाश में होता है। इन्हीं तीनों अवस्थाओं का नाम स्वप्न है। जाग्रत् अवस्था को भी स्वप्न कहते हैं क्योंकि वह भी एक दीर्घ स्वप्न है। इसमें जीव अज्ञान में ही पड़ा रहता है। इन तीन निवास स्थानों में रहकर जीव चिरकाल तक अविद्या के कारण अज्ञान रूपी निद्रा में पड़ा रहता है और अनेक प्रकार के अनर्थों से पीड़ित होकर भी वह नहीं जागता।

जीव माया के वश में होकर एक दम अज्ञान बना रहता है और वह क्षण भर में दूसरा शरीर धारण करके अनेक प्रकार के सुख दुःख आदि का अनुभव करता है। उसे अनेक प्रकार के झूठे अनुभव मोहवश होते हैं परन्तु उन्हें वह सच्चे ही समझता है। योग वासिष्ठ में लिखा है कि—

यथा स्वप्नमुहूर्ते स्यात् संवत्सरशतभ्रमः।
तथा मायाविलासोत्थो जायते जाग्रति भ्रमः॥

सभी स्वप्न क्षण भर में समाप्त हो जाते हैं परन्तु कभी-कभी उसी स्वप्न में ऐसा जान पड़ता है कि सैकड़ों वर्ष बीत गये। उसी प्रकार माया के वश से जाग्रत् अवस्था में भी भ्रम होता है। संक्षेप शारीरक में भी इसका प्रमाण मिलता है।

उक्तञ्च संक्षेपशारीरके--

सुप्तो जन्तुः स्वल्पमात्रेऽपि काले,
कोटीः पश्येद् वृत्तसंवत्सराणाम्।
कोटीः पश्येदेवमागामिकानां,
जाग्रत्काले योजयेत् सर्वमेतत्॥

जीव सो जाने पर अपनी स्वप्नावस्था में थोड़े ही समय में ऐसा समझता है जैसे सैकड़ों साल व्यतीत हो गये हों।

इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में भी समझ लेना चाहिए कि जो कुछ प्रतिक्षण होता है वह केवल भ्रम मात्र है। शैवागम में भी इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है।

शैवागमेऽपि—

कपालमिन्दुः करिचर्म नागाः काशीपुरी कण्ठगतस्य जन्तोः।
मूर्च्छासु मूर्च्छासु परिस्फुरन्ति संज्ञासु संज्ञासु तिरोभवन्ति॥

काशी पुरी में जब जीव के प्राण गले तक पहुँच जाते हैं और वह मरने लगता है उस समय जब-जब उसे मूर्च्छा (बेहोशी) आती है तब-तब उसे शिव जी के हाथ का कपाल, उनके ललाट पर का चन्द्रमा, उनके ओढ़ने का करिचर्म और उनके शरीर पर के सर्प दिखाई देते हैं और जब-जब मूर्छा दूर होती है तब-तब सब आँख के ओझल हो जाते हैं। अर्थात् जब प्राण जाने के समय बेहोशी

होती है उस समय महादेवजी तारक मन्त्र सुनाने के लिए आते हैं और उनके कपाल, चन्द्रमा आदि दिखाई देने लगते हैं परन्तु जब फिर होश हो आता है तो वे सब चीजें फिर लुप्त हो जाती हैं।

काशीखण्डेऽपि--

कृत्वा कर्माण्यनेकानि काल्याणानीतराणि च ।
तानि क्षणात् समुत्क्षिप्य काशीसंस्थो मृतो भवेत् ॥

अपने जीवन काल में जीव से अनेक प्रकार के पाप और पुण्य हो जाते हैं। पर काशी में मरते ही वह उन सब कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। प्राणों के छूटते ही क्षण भर में उसके सब कर्म नष्ट हो जाते हैं।

महापापौघशमनीं पुण्योपचयकारिणीम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदामन्ते को न काशीं सुधीः श्रयेत् ॥

बड़े-बड़े पापों को शान्त कर देने वाली, अनेक पुण्यों को उत्पन्न करने वाली, अनेक प्रकार के सुखों के भोग देकर अन्त में मोक्ष देने वाली काशी का ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो सेवन न करे। जिन्हें कुछ भी बुद्धि होगी वे ऐसी भुक्ति-मुक्ति देने वाली पवित्र पुरी का अवश्य ही सेवन करेंगे।

पुराणान्तरेष्वपि स्मर्यते तथाहि--

भगवान् मायाविमोहितः कदाचिन्नारदः कन्यात्वमवाप। तां कश्चिदुदवाहयत्। तदा पुत्रान् बहूनजनयत्। सांसारिकं च दुःखमनेककालीनमन्वभूत्। भर्तुः पुत्राणां च वियोगः। येन शोकेन पुनर्नारद एवासीत्। इति।

पुराणों में ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं जिससे जान पड़ता है कि माया के वश में पड़कर बड़े-बड़े ज्ञानी मानी मुनियों को भी अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव करना पड़ा है। देवर्षि नारद का मोह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

एक समय नारद ऋषि भगवान् की माया में फँस गये। माया के वश से वे कन्या हो गये और उनका विवाह एक पुरुष से कर दिया गया। अब उनके बाल-बच्चे उत्पन्न होने लगे और खासी गृहस्थी जम गई। संसार के सभी सुख-दुख झेलने पड़े। बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ सिर पर आकर पड़ीं। चिरकाल तक अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़े। अन्त में यहाँ तक हुआ कि पति और पुत्रों की मृत्यु हो गयी और इन्हें इस वियोग से इतना शोक हुआ कि उन्होंने अपने को सरोवर में जा डुबोया। गोता मारते ही फिर नारद के नारद हो गये।

इसी प्रकार स्कन्दपुराण में एक मुनि की कथा कही गयी है। स्कन्द पुराणे--

गङ्गातटे वसन् कश्चिन् मुनिर्मायाविमोहितः किरातकन्या समभवत्। तस्याः पाणिं किरातः कश्चिदग्रहीत्। सा च पुत्रान् बहून् प्रासूत, पौत्रांश्चापश्यत्। सा कदाचिदुदकाहरणाय गङ्गातीरमुपासीत्। किरातजातिस्वाभाव्याद्वासः कुम्भं च तीरे निधाय गङ्गायां प्राविशत् प्रविष्टमात्रा क्षणेनैकेन स एव मुनिरभवत्। विलम्बितां तामालक्ष्य तद्भर्तृपुत्रसम्बन्धिबान्धवाः तद्देशमागत्य वासः कुम्भं तदीयं दृष्ट्वा गङ्गाप्रवाहेण सा नीतेति निश्चित्य महान्तं प्रलापं चक्रुः। ततस्तेन मुनिना 'सोऽहमस्मि इति प्रबोधिताः प्रकृतिस्थानाभवन् अथ

विज्ञानैर्बहुभिः प्रबोध्यमानाः यथागतं सत्यमित्थमेवैतदिति शोकं परित्यज्यागच्छन् इति ।

प्राचीन काल में परम पावनी गंगा नदी के तीर पर एक मुनि निवास करते थे । वे किसी कारण से दैवी माया में फँस गये और एक किरात की कन्या हो गये, समय आने पर उसका एक किरात के साथ विवाह हो गया, धीरे-धीरे उसके कई एक पुत्र हुए और उन पुत्रों के भी पुत्र हुए, उसका बड़ा कुटुम्ब बढ़ा ।

एक दिन वह जल लाने के लिए गंगा के किनारे गई । उसने अपने कपड़े उतार कर किनारे पर रख दिये और वहीं पर अपना घड़ा भी रख दिया । ये सब चीजें तीर पर रखकर वह किराती गंगा में जा घुसी । घुसते ही उसकी सूरत एक क्षण में बदल गयी और उसका रूप फिर मुनि का सा हो गया ।

किराती के आने में जब देर हुई तब उसके घर के लोग बहुत घबड़ाये और उसे खोजने के लिए गंगा जी के किनारे गये । वहाँ उन लोगों ने उसके कपड़े देखे और वहीं घड़ा रक्खा पाया । उस स्थान पर किराती को न देखकर वे लोग समझ गये कि वह गंगा में बह गई । वे वहीं हाहाकार मचाने लगे और विलाप करने लगे ।

उन्हें रोते विलपते देखकर वे मुनि वहीं जा पहुँचे और कहने लगे कि तुम लोग क्यों रोते और विलाप करते हो ? मैं ही किराती था । गंगा में डुबकी लगाते ही मेरा रूप बदल गया है और अब इस रूप में हो गया हूँ, तुम लोग क्यों रोते विलपते हो ? मुनि ने उन लोगों को बहुत समझाया पर उनका शोक दूर नहीं हुआ । तब मुनि ने ज्ञान की बहुत सी बातें सुनाईं और अनेक उदाहरण

देकर उन्हें बहुत समझाया। बहुत समझाने बुझाने पर उनका शोक दूर हुआ और वे अपने घर गये।

वाराह पुराण में भी इसी प्रकार के मोह की कथा कही गई है—
वाराहपुराणेऽपि—

स्रवणाख्यो राजा कश्चित् मन्त्रिसामन्तनृपतिभूयस्यां सभायां सिंहासनस्थो मायाविना केनापि विमोहितस्तदानीं मायादर्शितमश्वरत्नमधिरुह्य समस्तां पृथ्वीं बभ्राम। अथ जविना तेन पतितः कस्मिंश्चिद्विजनेऽशयिष्ट। क्षुतृषापरीतश्चायमरण्ये व्यापारं किञ्चित् कुर्वतः पितुः कृते पानीयमन्नं चादाय गच्छन्तीं चाण्डालकन्यकामेकामपश्यत्, तदन्तिकमुपसृत्याब्रवीत्। "क्षुत्पिपासार्दितस्य स्तोकमन्नं पानीयं च देहि" इति। सा चैनमुवाच "त्वं चेन्मम भर्ता भविष्यसि तर्हि दास्यामि" इति। 'तथा' इत्यभ्युपगम्य अथैक देशस्थमन्नमभक्षयत् पानीयं चापिबत्। ततः सा तं पितुरन्तिकं नीत्वा वृत्तान्तमावेद्य तेनानुज्ञाता भाविना भर्त्रा साकं स्वभवनमयासीत्। मातृपितृभगिनीनां चैनमदर्शयत् ते च ताश्चैनमभ्यनन्दन्नमंस्त। तां चोद्वाहविधिना पर्यग्रहीत्। तया सह चिरकालमुवास। तस्यां पुत्रान् बहूनुपादयत्। अथ पुनः कालेन गच्छता दुर्भिक्षोपहतस्तस्माद्देशात्। तया भार्यया ताभिश्च प्रजाभिः सार्द्धं देशान्तरमयासीत्। स कदाचिन्निर्जले प्रदेशे कस्मिंश्चिद् वृक्षमूले क्षुत्पिपासार्दिताभिः प्रजाभिः भार्यया च सार्द्धं परिश्रान्तोऽशयिष्ट। "तात! अन्नं पानीयं च देहि" इति क्षुत्पिपासार्दितैः शिशुभिःप्रार्थ्यमानस्तेभ्यस्तदानीं तद्दातुमुपायं कश्चिदलभमानस्तेषामार्तिपरवशं वचः सोढुमशक्नुवन् बलादेधांस्याहृत्य सन्निपात्यप्रज्वाल्य "पक्वं शरीरमेते

भक्षयन्तु" इति बुद्ध्याज्वालाजटिलमग्निं प्राविशत्, ततः क्षणात् उन्मील्य अक्षिणी विस्मयाविष्टः क्षणेनैकेन तद् वृत्तं मन्त्रिसामन्तनृपतिभ्यः कथयामास—इति कथा वासिष्ठरामायणे। एवं जातीयकाः संत्यन्याश्चानेकशः कथाः।

लवण नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा था, एक समय वह अपने मन्त्री सेनापति तथा अन्य राजाओं के साथ अपनी सभा में बैठा था। उसी समय एक जादूगर आया और उसने अपने जादू के बल से एक उत्तम घोड़ा सामने लाकर खड़ा कर दिया। उस जादूगर की माया में फँस कर राजा ने उसे असली घोड़ा जान लिया और झटपट उसपर जा चढ़ा। सवारी करते ही वह घोड़ा राजा को ले उड़ा और बहुत दूर ले जाकर एक निर्जन वन में उसने उसे पटक दिया, वहाँ भूख और प्यास के मारे राजा तड़पने लगा।

एक चाण्डाल उसी जंगल में कुछ काम कर रहा था। उसके खाने पीने के लिए अन्न और जल लिये उस चाण्डाल की कन्या उसी ओर जा निकली। उसे देखते ही राजा के जान में जान आ गयी और उससे थोड़ा सा अन्न और जल माँगने लगा।

उसने कहा कि मैं तो देने वाली नहीं, यदि आप मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा करें तो मैं आप की सब कुछ सेवा करने के लिए तैयार हूँ! भूख और प्यास के मारे राजा के प्राण निकल रहे थे उसने अपने प्राणों की रक्षा करना परम आवश्यक समझा। इसलिए उसने विवाह करना स्वीकार कर लिया।

वह चाण्डाल कन्या बड़ी प्रसन्न हुई और राजा को उसने बड़े प्रेम से भोजन कराया। फिर वे दोनों उस चाण्डाल के यहाँ गये

और उस कन्या ने अपने पिता से सब हाल कह सुनाया। पिता की आज्ञा लेकर राजा को वह अपने घर ले गई और अपनी माता, बहिन और भाइयों से राजा का परिचय देकर सब हाल सुनाने लगी। उन लोगों की राजी से वहीं पर इन दोनों का विधि पूर्वक विवाह हो गया और राजा अपनी नव-विवाहिता वधू के साथ वहीं निवास करने लगा। वह बीस वर्ष वहाँ रहा। कई लड़कियाँ और कई लड़के उसके घर में खेलने कूदने लगे, खासी गृहस्थी जम गई।

कुछ समय के अनन्तर उस देश में घोर अकाल पड़ा। कूएँ और तालाब सूख गये। पेड़ो में पत्ते न रहे। उस प्रान्त भर में हाहाकार मच गया। सब लोग घर-बार छोड़कर भागने लगे। राजा भी अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर दूसरे देश को चला। जाते जाते वह बहुत दूर तक पहुँचा, परन्तु कहीं अन्न जल नहीं मिला। अन्त में एक वृक्ष के नीचे अपने कुटुम्ब समेत जा बसा।

भूखे प्यासे छोटे-छोटे बच्चे करुण स्वर से चिल्ला-चिल्ला कर अन्न और जल माँगने लगे। उनका अतिरोदन सुनकर राजा की छाती फटी जाती थी। अन्न, जल का कहीं ठिकाना तो था ही नहीं। उसने अपने मन में सोचा कि यदि अपने शरीर को जला डालूँ तो मेरे मांस को खाकर ये बच्चे अपने प्राणों की रक्षा कर सकेंगे। इसी विचार से ईंधन इकट्ठा करके उसमें आग लगाकर वह धधकती हुई आग में कूद पड़ा।

माया तो थी ही, आँख खोलते ही राजा फिर वहीं का वहीं, वही सभा और वही मन्त्री। राजा ने सभासदों के सामने आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया। उस जादूगर की करामात से

सब चकित हो गये और मुक्त-कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने लगे।

यह कथा वासिष्ठ रामायण (योग वासिष्ठ) में कही गयी है। इसी प्रकार की सैकड़ों कथाएँ पुराणों में हैं।

एवमुक्तप्रकारेण काश्यामपि केषाञ्चित् स्मर्यमाणः शरीरान्तर प्रवेशः कालभैरवयातनाद्यनुभवश्च मायामय एवेत्यभिज्ञैरव गन्तव्यम्। अयमर्थः सनत्कुमारसंहितायां स्पष्टः।

इसी प्रकार पुराणों में कई एक ऐसी कथाएं मिलती हैं जिनसे जाना जाता है कि काशी में मरने पर भी जीव को दूसरे शरीर में प्रवेश करना पड़ा अथवा काल भैरव की यातना भोगनी पड़ी। परन्तु यह सब परमेश्वर की अपार लीला के द्वारा होता और क्षण भर में समाप्त हो जाता है, केवल प्रतीत ऐसा होता है जैसे हजारों साल बीत गये हों जैसा कि ऊपर की कथाओं से जान पड़ता है, यही बात सनत्कुमार संहिता में स्पष्ट शब्दों में कह दी गई है।

अत्रैव पापः सहचेन्मृतोऽसौ न जन्ममृत्यू लभते त्ववश्यम्।
कालेन मे यामगणैः फलेषु नियोजितस्तत्सकलं प्रयुज्य॥
अल्पेन कालेन समस्तमेव सार्थं पुरा रुद्रपिशाचरूपैः।
भवप्रसादेन कृतोपदेशः पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति॥

इस परम पवित्र काशीधाम में यदि कोई प्राणी पापों के अवशिष्ट रहते ही मर जाता है तो भी उस प्राणी को फिर कभी जन्म और मरण के दारुण दुःख नहीं झेलने पड़ते। यमदूत उस प्राणी को उन पापकर्मों के फलों में नियुक्त अवश्य करते हैं पर वह प्राणी रुद्रपिशाच का रूप धारण कर बहुत ही थोड़े समय में उन सब कर्मों का फल भोग लेता है और तब शिव जी के प्रसाद से तारक

मन्त्र का उपदेश पाकर उस पिशाचयोनि से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

"यथात्र पुण्यं कृतम् अक्षयं स्यात्तथात्र पापं न तयोर्विशेषः" इति स्तुतिनिन्दार्थवादः। अन्यथा सर्वेषां मनुष्याणां पुण्यपापयोरल्पयोर्वा संभवात् तयोरक्षयश्रुत्यङ्गीकारे न कस्यापि मुक्तिः स्यात्तदत्र मुक्ति प्रतिपादकयोः श्रुतिस्मृत्योर्वैयर्थ्यं स्यात्। अतो हेतोः काश्यां कञ्चित कालमुषित्वा बहिर्गत्वा ये म्रियन्ते तद्विषयमेव तदित्यवगन्तव्यम्।

जैसे काशी में किया हुआ थोड़ा भी पुण्य अधिक और चिरस्थायी फल देता है वैसे ही काशी में किये हुए पाप कर्मों का फल भी अधिक और चिरस्थायी होता है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं। ऐसा शास्त्रों का कथन काशी में किये हुए पुण्य कर्मों की स्तुति और पाप कर्मों की निन्दा के लिए है। यदि काशी में किये हुए पाप-पुण्यों का फज अक्षय मान लिया जाय तो "काशी में मरने से मुक्ति होती है" यह श्रुति असंगत हो जायेगी। क्योंकि किसी मनुष्य से कुछ न कुछ पुण्य-पाप किये विना रहा नहीं जा सकता। इसलिए ऐसा मानना चाहिए कि काशी में कुछ काल रहकर जो बाहर जाकर मरते हैं उनको काशी में किये हुए पाप और पुण्य कर्मों का फल अधिक और चिरस्थायी रूप से भोगना पड़ता है। काशी में मरने वालों को तो पुनर्जन्म लेकर पाप अथवा पुण्य कर्मों का फल भोगना ही नहीं पड़ता।

"वाराणस्यां कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति" इत्यपि वचनं तथैव मन्तव्यम्। "पापकर्मा कश्चित् काश्यां म्रियते पुण्यकर्मा बहिर्म्रियते"

इति नैवं विज्ञानवद्भिः विचारणीयम् । एकस्मिन्नेव जन्मनि पुण्य-पापयोः परिच्छेत्तारोवयम्, अनादौ संसारे मनोवाक्कायैः पुण्यपापयोः परिच्छेत्ता परमेश्वरः ।

इसी तरह 'काशी में किया हुआ पाप वज्रलेप होता है यह वचन भी जो काशी में पाप कर्म करके अन्यत्र मरते हैं उन्हीं पर लागू होता है ऐसा मानना चाहिए । कुछ लोगों को यह शङ्का होती है कि कोई-कोई पाप करने वाले क्यों काशी में मरते हैं और कोई कोई पुण्य करने वाले अन्त काल में क्यों काशी के बाहर जाकर मरते हैं, ऐसा होने से पुण्यात्मा के मोक्ष मिलने में बाधा पड़ती है और पापी अनेक प्रकार के पाप करता हुआ भी केवल काशी में मरने से मोक्ष का अधिकारी बन जाता है । परन्तु ज्ञानवान् विचारशील पुरुषों को ऐसा विचार न करना चाहिए । हम लोगों की दृष्टि में कोई पुण्यात्मा मालूम पड़ता है, कोई पापात्मा पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह यथार्थ में पुण्यात्मा है या नहीं । क्योंकि हम लोग तो एक ही जन्म के पाप पुण्यों को देख सकते हैं और उसी से अपना विचार कर सकते हैं, परन्तु ईश्वर तो सब जानता है कि अनादिकाल से उस जीव ने अनेक जन्म पाकर मन, वाणी और शरीर से कितने पाप और पुण्य किये हैं । उन्हीं पाप पुण्यों के अनुसार परमेश्वर नियमन करता है और किसी व्यक्ति को काशी में मरने का सौभाग्य देता है और किसी को मरने के समय काशी के बाहर कर देता है । यह बात सत्य है कि पापी को कभी काशी नहीं मिल सकती और इसी प्रकार जिसके बहुत ही उत्कट पुण्य होंगे उसी को काशी मिल सकती है । वे

पुण्य चाहे उसी जन्म में किये गए हों या किसी पूर्व जन्म के किये गये हों।

यही बात "ब्रह्मवैवर्त" पुराण में स्कन्द ने अगस्त्य से उस समय कही जब कि विन्ध्याचल ने ऊँचे होकर आकाश तक अपनी चोटी फैला दी थी और सूर्य, चन्द्र आदि का भी मार्ग रोक दिया था। उस समय देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्य महर्षि को काशी छोड़ बाहर जाना पड़ा था। काशी के वियोग से उन्हें असह्य मानसिक कष्ट हो रहा था—

न ज्ञायते सूक्ष्मतरं हि किञ्चित् कर्मास्ति लोकस्य सुदुर्विभाव्यम्।
योगादियज्ञादितपोभिरुग्रैर्युक्तस्यते सम्प्रति नास्ति काशी।

संसारिक जीवों के कर्म ऐसे लुप्त होते हैं कि जिनका पता लगाना बहुत ही कठिन है। यों तो उन कर्मों का पता नहीं लगता और जान पड़ता है कि ऐसा कोई कर्म है ही नहीं जिसका फल उस प्रकार का हो, परन्तु जब वह कर्म अपना फल भोगा देता है तब उसका पता चलता है। हे अगस्त्य मुनि ! आप इतने बड़े योगी हैं, यज्ञ करना तो आप का एक प्रधान कर्तव्य है, बड़े कठिन तप आप ने कर डाले हैं और सब प्रकार से शुद्ध और पुण्यात्मा हैं, उस पर भी आपका न जाने कब का एक कर्म था जिससे काशी अब आपके भाग्य से उतर गई और आप को काशी छोड़नी पड़ी।

न ज्ञायते कस्य किमस्ति पुण्यं स्वल्पोपि काश्यां तनुभृत् सदास्ते
देवादयोऽपि प्रभवन्ति नैव स्थातुं क्षणं काशिकायां कुगर्वाः।

किसके कितने पुण्य और किसके कितने पाप हैं इस बात का पता लगाना बहुत कठिन है। कभी वे मनुष्य जिनके पुण्य बहुत थोड़े

मालूम पड़ते हैं, काशी में निवास करते रहते हैं। कभी-कभी देवता लोग भी, जो कि बहुत ही धर्मात्मा समझे जाते हैं, काशी क्षण भर भी नहीं रहने पाते और उनका अभिमान नष्ट हो जाता है।

कृतप्रयत्नापेक्षस्तारकं ब्रह्म उपदिशति इत्यवगन्तव्यम्।
अन्तर्बहिः करोतीति च प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः।
यथाग्नेः दाहकशक्तिस्तथा काश्यां मोचकशक्तिः प्रतिनियतैव।

भगवान् शङ्कर के द्वारा तारक मन्त्र के उपदेश मिलने का अवसर तभी प्रप्त होता है जब कि जीव अपने सतत प्रयत्न से उसके योग्य हो जाता है। सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ शक्ति का रहना तो निश्चित् ही है। जिस प्रकार अग्नि में दाहिका (जलाने वाली) शक्ति नियमित रूप से रहती है उसी प्रकार काशीपुरी में भी जीव को संसार के बन्धनों से छुड़ाकर मुक्त करने की शक्ति वर्तमान है।

यथा शुक्तौ पयोवाहात् पतिता जलबिन्दवः।
मुक्ताः स्युस्तथा काश्यां स्थिताः सर्वेऽपि जन्तवः।

स्वाती नक्षत्र में मेघ से जितनी बूँदें शुक्ति में गिरती हैं वे सब मुक्ता (मोती) बन जाती हैं। ठीक उसी प्रकार से काशी में रहने वाले और वहीं शरीर परित्याग करने वाले सभी जन्तु मुक्त हो जाते हैं। उनका फिर जन्म नहीं होता।

कीटाः पतङ्गाः पशवश्च वृक्षाः
जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
मण्डूकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां
त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति।

जल में था स्थल में रहने वाले सभी कीट, पतंग, पशु, मेढक, मछलियाँ यहाँ तक कि छोटे - छोटे कृमि भी काशी में शरीर का परित्याग कर शिव में लीन हो जाते हैं। काशीपुरी में छोटे से छोटे जीव की भी जब मृत्यु होती है तब वह शिवलोक में पहुँचकरकर शिवसायुज्य को प्राप्त होकर संसार के आवागमन से मुक्त हो जाता है।

पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्थं सबीजं सशरीरमार्ये।
इहैव संहृत्य ददाति बोधं यतः शिवानन्दमवाप्नुवन्ति ॥

हे आर्ये ! जिस समय जीव काशीपुरी में शरीर का परित्याग करता है उस समय भगवान् शङ्कर उसके समस्त पापों और पुण्यों को बीज सहित नष्ट कर देते और उन्हें ऐसा उत्तम ज्ञान देते हैं जिससे उन्हें शिव के समान ही आनन्द प्राप्त होता है।

सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्,
स्थानंसुरेश्वरि मृतस्य न यत्र मोक्षः।
भूमौ जले वियति वाशुचिमेध्यतो वा,
सर्पाग्निदस्युपविभिर्निहतस्य जन्तोः।

हे देवि ! मेरी इस काशी पुरी में ऐसी कोई सुई भर भी जगह नहीं है जिसमें मरने पर जीव को मुक्ति न मिले, चाहे भूमि में मरे चाहे जल में मरे और चाहे आकाश में मरे, पवित्र स्थान में मरे चाहे अपवित्र स्थान में मरे उस जीव को मुक्ति अवश्य ही मिल जाती है। जो लोग सर्प के काटने से, अग्नि में जल जाने से, वज्र के गिरने से अथवा चोरों के द्वारा असमय मारे जाते हैं उनकी अकाल मृत्यु कही जाती है और उन्हें सद्गति नहीं होती, परन्तु

काशी में किसी प्रकार भी मरे को मुक्ति अवश्य ही मिलती है।

स्थिरा काश्यामिहैवैका प्रतिज्ञा हि मया कृता।
अत्रैव मृतयात्राणां तिरश्चामपि देहिनाम्॥
भक्तानामप्यभक्तानां पुण्यपापात्मनामपि।
मुक्तिं दास्यामि सर्वेषां भक्तानामेव सा वहिः॥

शिवजी कहते हैं कि मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि इस काशीपुरी में मरने वाले सभी मनुष्य, पशु, पत्ती, कीट, पतंग आदि को चाहे वे भक्त हों या नहीं, पुण्यात्मा हो अथवा पापी अवश्य मुक्ति दूँगा, काशी से बाहर मरने वाले उन्हीं मनुष्यों को मैं मुक्ति दूँगा जो मेरे अनन्य भक्त हैं, दूसरों को नहीं।

विनापि योगैश्च विनापि पुण्यैर्विनापि दानैस्सहितोपि पापैः।
मृतः प्रयात्येव हि यंत्र तत्र मामेव निर्दग्धसमस्तदोषः॥

अपने जीवन काल में किसी प्रकार की योग क्रिया किये विना ही, किसी प्रकार के पुण्य कार्य के विना किये ही यहाँ तक कि घोर पापों से घिरे रहने पर भी जीव काशी में मरते ही मेरे लोक में पहुँच कर मुक्त हो जाता है और उसके सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

अत्र साक्षात् महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म जन्तूनामपवर्गदः॥

काशी पुरी में देह परित्याग करते ही साक्षात् पमेश्वर शिव जीव को तारक मन्त्र का उपदेश दे देते हैं। उससे उसे मोक्ष मिल जाता है।

सनत्कुमार संहितायाम्—

महात्मनां शान्ततपोधनानां शापो मुनीनामपियत्र भग्नः।
तत्क्षेत्रमासाद्य महानिधानं वणिग् जनोप्यत्र वसन् कृतार्थः॥

वड़े तपस्वी शान्त मुनियों ने कई बार अनेकों मनुष्यों को उनके भीषण अपराध पर शाप दिये हैं परन्तु यदि वे काशी में आकर वस गए हैं तो उनके सब पाप दूर हो गये हैं और मुनियों का शाप झूठा हो गया है। ऐसे पवित्र तीर्थ काशीपुरी में रहने से अनेक प्रकार के व्यापारों में फँसा हुआ वणिक् भी कृतार्थ हो जाता है।

योगोऽत्र निद्रा क्रतवः प्रचाराः,
स्वेच्छाशनं देवि महानिवेद्यम् ॥
लीलात्मनो देवि ! पवित्रदानं,
जपः प्रजल्पः शयनं प्रणामः ॥

शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे देवि ! इस काशी पुरी में साधारण सोना योगनिद्रा के समान है, अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करना ही परमेश्वर को उत्तम नैवेद्य समर्पण करना है, अपनी लीला ही पवित्र दान है, बात चीत करना ही जप है और निद्रा लेने के लिए लेटना ही भगवान को साष्टांग प्रणाम करना है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पुरी में जो कुछ भी काम किया जाता है वह परम पद की प्राप्ति में सहायक होता है।

मोक्षं सुदुर्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम् ।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥

सभी जानते हैं कि मोक्ष कितना दुर्लभ है और संसार कितना भयंकर है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने पैरों पर पत्थर पटक कर तोड़ डाले और काशीपूरी में निवास करे। अर्थात् किसी भी दशा में काशी के बाहर पैर न रखे क्योंकि काल के आने का

समय कोई नहीं जानता। काशी के बाहर मरने से हाथ में आई हुई मुक्ति निकल जाएगी।

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन।
गतिमन्यां न पश्यामि मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्॥

हे पाण्डुनन्दन! यह घोर कलियुग आ गया है। इसमें वाराणसी नगरी को छोड़कर और कहीं मुक्ति मिलनी असम्भव दिखाई दे रही है।

जपध्यानविहीनानां ज्ञानविज्ञानवर्जिनाम्।
तपस्युत्साहहीनानां गतिर्वाराणसी नृणाम्॥

जो मनुष्य न तो जप करते हैं और न परमेश्वर का ध्यान ही करते हैं, ज्ञान और विज्ञान से रहित हैं, तप करने के लिए जिनके हृदय में लेशमात्र भी उत्साह नहीं ऐसे मनुष्यों की गति काशी में ही हो सकती है, दूसरी जगह ऐसे मनुष्यों को मोक्ष मिलना अत्यन्त असम्भव है।

अस्यत्यसिर्वारयति प्रवेशे कर्माणि जन्तोर्वरणा वरेण्या।
वाराणसी मध्यगता तयोश्च निश्शेषयत्यूरताप्रभावात्॥

वाराणसी के दक्षिण में असि नाम की नदी है और उत्तर में वरणा नाम की नदी है। इन दोनों नदियों के बीच में वाराणसी है। असि का काम है कि जन्तुओं के शुभ-अशुभ कर्मों को बाहर निकाल कर फेंक दे और वरणा का काम है कि जीव के कर्मों को जीव के साथ रहने से रोक दे। अर्थात् वरणा के प्रभाव से तो जीव के कर्मों का फल जीव के पास आने नहीं पाता और असि के प्रभाव से यदि कोई फल किसी प्रकार जीव तक पहुँच जाए तो

हटाकर दूर कर दिया जाता है, इन दोनों नदियों के बीच में बसी हुई वाराणसी अपनी ऊष्णता के प्रभाव से जीव के सब कर्म निश्शेष कर देती है, कोई भी कर्म अपना फल जीव को नहीं देने पाता और इसीसे उसकी मुक्ति हो जाती है।

अनिदमुदयमाद्यं धाम वामार्द्ध कान्तं,
स्वमहिमरसिकं यत् स्वानुभूत्यैकमानम्।
अनधरतमपास्तद्वैतमात्मावबोधं,
प्रकटयति पशूनां कालपाकेन काश्याम्॥

भगवान् शंकर का परम प्रकाशमान अर्धनारीश्वर रूप चक्षुरादि इन्द्रियों के अगोचर है। अपनी महिमा में ही विराजमान है। अपने ही अनुभव से इसका ज्ञान हो सकता है इसके जानने में वाह्य प्रमाणों से सहायता नहीं मिल सकती। यह परम पवित्र तथा निर्मल आनन्द रूप है। इसके दर्शन मात्र से द्वैत भाव दूर हो जाता है। इस प्रकार का अपना अलौकिक तेजस्वी रूप करुणावरुणालय भगवान् शंकर पशु के समान विवेक-रहित जीव को उसके सांसारिक भोग पूरे कराकर दिखा देते हैं। इस अलौकिक रूप का दर्शन करते ही जीव मुक्त हो जाता है।

भगवान् शंकर काशीपुरी में शरीर परित्याग करनेवाले जीवों को ऐसा अलौकिक पवित्र स्वानुभव गोचर आत्मज्ञान दे देते हैं जिससे उनका द्वैतभाव दूर हो जाता है और मोक्ष पा जाते हैं।

जन्मान्तरसहस्रेषु मोक्षो लभ्येत वा न वा।
इहैव लभ्यते जन्तोर्मुक्तिरेकेन जन्मना॥

हजारों जन्म के कठिन उद्योग करने पर भी मोक्ष मिलेगा या नहीं इसमें सन्देह ही है। काशी ही एक ऐसी पुरी है जिसमें प्राण त्याग करने से एक ही जन्म में निस्संन्देह मुक्ति मिलती है।

गर्भाधानद्यखिलमपि यत् कर्मजातं द्विजाना।
मेकं न्यूनं मुनिमपि मुने! पातयिष्यत्यवश्यम् ॥
नो चेत् स्वर्गादिषु फलमदः सर्वशास्त्रेषु सिद्ध।
तस्मात् काश्यां कथमपिवसेद् बुद्धिमानमुक्तिसिद्ध्यै ॥

हे मुने! ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्यों के गर्भाधान, पुंसवन आदि सभी संस्कार जब विधि विहित रीति से किये जाते हैं तभी वे पवित्र समझे जाते हैं। इन संस्कारों में से यदि एक भी संस्कार न किया जाये तो वह मनुष्य कितना भी उच्च क्यों न हो उसका पतन अवश्य होता है। यदि पतन न भी हो तो शास्त्रों में बताए गये स्वर्गादिक फल उसको मिल सकते हैं, मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि किसी न किसी प्रकार काशी में ही निवास करे तभी उसे मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

काशि! श्रीमति! सर्वकर्मशमनी स्वाभाविकी काचन,
प्रत्यक्षं तव शक्तिरस्ति महती मातर्महीमण्डले ॥
यत् सर्वत्र सदा वसन्नपि शिवस्त्वय्येव लब्धवास्पदं
विश्वं तारयते विशेषविमुखः पारं भवाम्भोनिधेः ॥

हे काशी माता! आप में एक ऐसी अपूर्व स्वाभाविकशक्ति प्रत्यच्च दिखाई देती है जो जीव द्वारा किये गये सभी शुभ और अशुभ कर्मों को शान्त कर देती है। इस भूमण्डल में ऐसी शक्ति और कहीं नहीं जान पड़ती। शिवजी सभी जगह सदा वर्तमान

रहते हैं, परन्तु आप में बैठकर वे योग्य अयोग्य का विचार किये बिना ही सबको इस संसार सागर से पार कर देते हैं। जान पड़ता है कि आप के संयोग से ही भगवान् शिव में यह तारने की शक्ति आ जाती है। आप के सहारे से वे जीवमात्र को, चाहे वह मोक्ष का अधिकारी हो चाहे न हो मुक्ति देते हैं।

आब्रह्मणोऽनन्तभवेषु पुण्यं मद्भावनोपार्जितमल्पमल्पम्।
तत्तद्वशाद् यद्यविमुक्तमेकं कदाचिदायाति मम प्रसादात्॥

भगवान् शंकर कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर जीव के जितने जन्म होते हैं उनमें मेरा भजन करने से थोड़ा थोड़ा पुण्य इकट्ठा होता जाता है। यदि कोई काशी में आकर बस जाय और उसका शरीर यहीं छूटे तो समझना चाहिए कि यह सब मेरे भजन के द्वारा उत्पन्न होने वाले पुण्य का ही फल है। साधारण पुण्य से काशी का निवास और काशी का मरण प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिए उन्हीं सदाशिव की शरण जाना चाहिए, उन्हीं के प्रसाद से काशी में मरने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

तीर्थानि सर्वाण्यपि मोक्षदानि श्रुतानिसर्वेष्वखिलेषु राजन्।
वाराणसीप्राप्तिफलानि शीघ्रं कालेन चातो व्यधानवन्ति॥

हे राजन्! सब शास्त्रों में जितने मोक्ष देने वाले तीर्थ कहे गये हैं वे सब साक्षात् मोक्ष नहीं देते किन्तु उसे दूसरे जन्म में काशी पहुँचा देते हैं और वहाँ पहुँचकर जीव शरीर का परित्याग करता और मुक्त हो जाता है। अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों में मरने से मोक्ष मिलने में एक जन्म का व्यवधान पड़ता है परन्तु काशी में मरते ही मुक्ति मिल जाती है।

यत्राचार्यस्त्रिपुरविजयी साधनानां चतुर्णां
संपद्दासः सुलभमशनं स्वैरचारस्तपांसि ।
श्रोतव्यस्य श्रुतिरपि तपः श्रूयते जन्मभाजां
काले काश्यां सुकृतधनिकास्त्र वासं लभन्ते ॥
(सनत्कुमार संहिता)

काशीपुरी में त्रिपुर को जीतने वाले साक्षात् शङ्कर भगवान् ही तारक मन्त्र के उपदेश देने वाले आचार्य हैं, मोक्ष के चारों साधन इस पुरी में सदा उपस्थित रहते हैं। भगवती अन्नपूर्णा की कृपा से भोजन आदि का मिलना यहाँ एकदम सुलभ है। प्रति दिन का चलना, फिरना, उठना, बैठना ही यहाँ तपस्या के समान है। साधारण जीव यहाँ जो कुछ सुनते हैं वही वेद का श्रवण के समान फल देता है। ऐसी उत्तमपुरी काशी में जो बहुत ही पुण्यवान् होते हैं वे ही निवास करने का सौभाग्य पा सकते हैं।

जन्मान्तरसहस्रेषु सञ्चितैः पुण्य कर्मभि ।
प्राप्ता वाराणसी रम्या प्रसादात् परमेश्वरात् ॥

हजारों जन्मों में मैंने अनेकों पुण्य कर्म किये। वे धीरे-धीरे सञ्चित होते गये। उन्हीं पुण्यों के फल से परमेश्वर का प्रसाद हुआ और परम मनोहर काशीपुरी मिली।

ये काश्यां संशयाविष्टा मुक्तौ तेषां शरीरिणाम् ।
प्राणप्रयाण समये प्रमाणं परमेश्वरः ॥

काशी में मरने से मुक्ति मिलती है या नहीं इस विषय में कुछ लोगों को सन्देह होता है, परन्तु भगवान् शंकर इसका प्रमाण मरने

के समय अवश्य दे देते हैं। अर्थात् जिस समय जीव अपनी देह का परित्याग करता है उसी समय भगवान् सदाशिव उसे तारक मन्त्र के उपदेश के द्वारा मुक्त कर देते हैं और उस जीव को काशी में मरने से मुक्ति मिलती है। इसका प्रमाण मिल जाता है।

मोक्षस्य निर्णयः काश्यामित्थमेकेन जन्मना।
सर्वेषामेव जन्तूनां प्रमाणैः प्रतिपादितः॥

इस पुस्तक में श्रुति स्मृति, पुराण आदि के अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि सभी स्थावरों और जंगमों को एक ही जन्म में काशी के सेवन से मोक्ष मिल जाता है।

किं वहूक्तेन—

येनकेनापि यः कश्चित् निमित्तेन परित्यजेत्।
काश्यां प्राणान् सर्वजन्तुर्मुक्त इत्यवगम्यताम्॥

वहुत विस्तार न करके संक्षेप में कह दिया जाता है कि कोई भी जन्तु किसी कारण से काशी में शरीर का परित्याग करे तो वह अवश्य मुक्त हो जायेगा, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है।

इति श्री सुरेश्वराचार्य विरचितः सकलश्रुतिस्मृति निर्द्धारितः काशीमोक्ष निर्णयः समाप्तः।



अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी करपात्री जी के ग्रन्थ

हिन्दीग्रन्थ–वेदार्थपारिजात १८०।- रामायणमीमांसा ६०।- मार्क्सवाद और रामराज्य (प्रेस में), विचार पीयूष ३०।-, भक्ति सुधा ९०।-, संकीर्तन मीमांसा एवं वर्णाश्रमधर्म ५।-, वेद का स्वरूप और प्रामाण्य (२ भाग) १५।-, अहमर्थ और परमार्थसार १५।-, क्या सम्भोग से समाधि ५।-, राहुल जी की भ्रान्ति ५।-, तिथ्यादिनिर्णयः कुम्भनिर्णयश्च २।-, संक्षिप्त परिचय ३।-, दशनामापराध ४।-, वेदान्तप्रश्नोत्तरी ५।-, श्री अभिनव शंकर स्वामीकरपात्री ७५।-, भागवत सुधा ३०।-, मार्क्स और ईश्वर ५।-, राधासुधा ३०।-, भ्रमरगीत २०।-, रास और प्रयोजन ३।-, जाति, राष्ट्र और संस्कृति ४।-, प्रवचन-पीयूष ६।-, बदलती दुनिया ५।-, जीवन दर्पण ३।-, शंका-समाधान (प्रेस में), विदेश यात्रा ४।- श्रीकरपात्री संस्मरण ५।-प्रै०

संस्कृत ग्रन्थ—विचाररत्नाकर ६०।- चातुर्वर्ण्यसंस्कृतविमर्शः (२ भाग) २५।- श्रीविद्यावारिवस्या २५।- भक्तिरसार्णव १०।-, वेदस्वरूप विमर्श १५।- वेदप्रामाण्यमीमांसा २।-

संरक्षकः—

श्री वेदान्ती स्वामी, श्रीकरपात्रीधाम, केदारघाट, वाराणसी

हमारी काशी विश्वनाथ दर्शन-यात्रा मण्डली के सदस्य इस प्रकार हैं—

१. आचार्य श्रीस्वामी शिवानन्द सरस्वती (अध्यक्ष)

२. श्री स्वामी गङ्गानन्द तीर्थ (संरक्षक)

३. श्री वैद्यनाथ प्रसाद त्रिपाठी, साहित्याचार्य (मन्त्री)

४. श्री शिवशङ्कर चौबे, कमिश्नर (सचिव)

५. श्री स्वामी विपिनचन्द्रानन्द (जज साहब)

६. श्री कलक्टर रामप्रसाद जी

७. श्री घनश्याम त्रिपाठी, साहित्याचार्य, पी० एच० डी०

काशी मोक्ष निर्णय का ग्रन्थों में प्रमाण

(१) यजुर्वेद (२) जावालोपनिषद् (३) सनतोपनिषद् (४) लिखित स्मृति (५) श्रृंगिस्मृति (६) पाराशर स्मृति (७) महाभारत (वन पर्व अ० ८४, भीष्म पर्व अ० २४, कर्ण पर्व अ० ५, अनुशासन पर्व अ ३०)

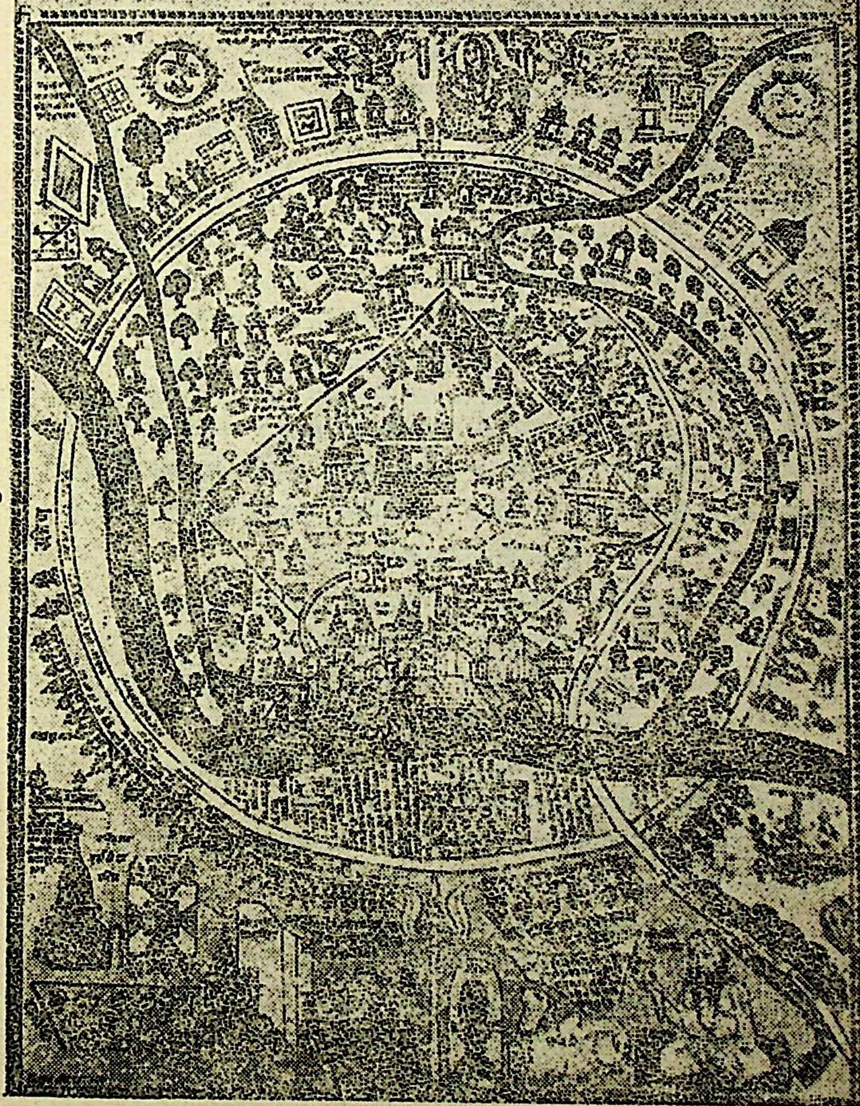
(८) शिव पुराण (९) लिङ्ग पुराण (१०) स्कन्द पुराण (११) ब्रह्म वैवर्तपुराण (१२) नारदीय पुराण (उत्तर खण्ड अ० २९, ४८, ४९, ५०, ५१, आदि) (१३) ब्रह्मपुराण (अ० ११) (१४) कूर्मपुराण (१५) ब्राह्मी संहिता (अ० ३१ से ३५ तक) (१६) मत्स्यपुराण (अ० १८० से १८५ तक) (१७) पद्मपुराण में (सृष्टि खण्ड अ० १४ तथा स्वर्ग खण्ड अ० ३३ से ३७ तक भूमिखण्ड अ० ९१) (१८) वामन पुराण अ० ३० में (१९) अग्नि पुराण (अ० ११२) (२०) मार्कण्डेय पुराण (अ० ८ में (२१) वायु पुराण (२२) सौर पुराण (२३) भविष्य पुराण (२४) शिवरहस्य (२५) काशी माहात्म्य (२६) वाल्मीकि रामायण (२७) श्री मद्भागवत (२८) देवी भागवत (२९) सनत्कुमार संहिता (३०) तिरस्थली सेतु में (३१) नैषध चरित (३२) काशी रहस्य (३३) काशीदर्पण (३४) काशी प्रकाश (३५) काशी स्थित चन्द्रिका (३६) काशी मुक्ति विवेक (३७) काशी तत्व विवेक (३८) काशी विनोद में (३९) काशी कुतूहल में (४०) गो० तुलसीकृत रामायण में ।

विशेष रूप से काशी खण्ड, काशी रहस्य, शिव रहस्य में काशी की महिमा का वर्णन है और सनातन धर्म सम्बन्धी अनेक सद्ग्रन्थों में तथा अन्य विदेशी धर्माव-लम्बी विद्वानों ने भी काशी की महिमा की प्रशंसा की है; लिखा है ।

काशी माहात्म्य, तिरस्थली सेतु, काशी दर्पण, काशी प्रकाश, काशी मुक्ति विवेक, काशी तत्वविवेक, काशी विनोद में ।

"श्री काशी पंचकोशी तीर्थदर्शन"

KASHI PANCH-KOSHI and ITS TEMPLE



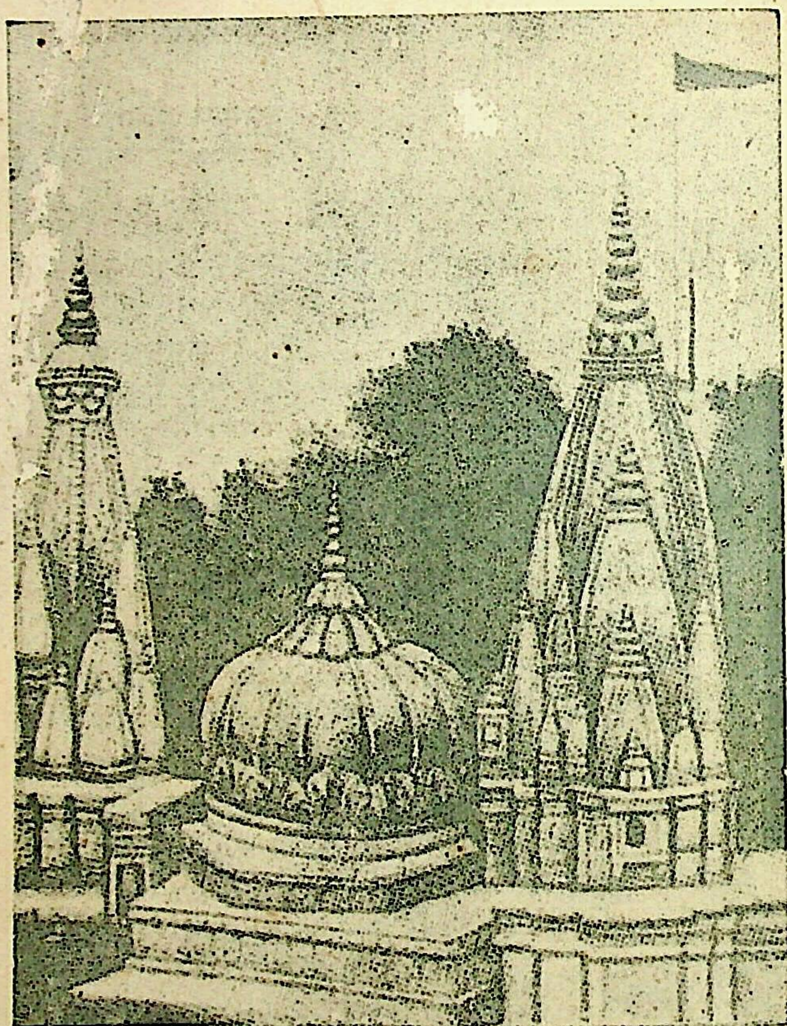
॥ कालभैरवाष्टकम् ॥

देवराज सेव्यमान-पावनांघ्रिपङ्कजम्, व्यालयज्ञ-सूत्रमिन्दु-शेखरं कृपाकरम् ।
नारदादि-योगिवृन्द वन्दित दिगम्बरम् काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे ॥
भानुकोटि भास्वरं भवाऽब्धितारकं परम्, नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम्
कराल-कालमम्बुजाक्ष-भक्षशूलमक्षरम्, काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे ॥
शूलटङ्क कालदण्ड-पाणिमादिकारणम्, श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयम् ।
भीमविक्रम प्रभुं विचित्रताण्डव प्रियम् काशिकापुराधिनाथ काल भैरवं भजे
भुक्ति-मुक्तिदायकं प्रशस्तचारु-विग्रहम्, भक्तवत्सलस्थितं समस्तलोकविग्रहम् ।
विनिक्वणन् मनोज्ञहेम किङ्किणीलसत्कटिम्, काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे
धर्मसेतु-पालकं त्वधर्ममार्ग नाशकं कर्मपाश-मोचकं सुशर्मदायकं विभुम् ।
स्वर्णवर्ण-शेषपाश शोभिताङ्ग मण्डल काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे ॥
रत्नपादुकाप्रभाभिराम-पादयुग्मकम् नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम् ।
मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रमोक्षण काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे ॥
अट्टहास भिन्नपद्मजाण्डकोशसन्ततिम् दृष्टिपात नष्टपाप जालमुग्रशासनम् ।
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं काशिकापुराधिनाथ काल भैरवं भजे ॥
भूतसङ्घ नायकं विशालकीर्त्तिदायकं काशिवासलोकपुण्यपापशोधकं विभुम् ।
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं काशिकापुराधिनाथ काल भैरवं भजे ॥
कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुण्यवर्द्धकम् ।
शोक मोह-दैन्यलोभ-पाप-तापनाशनं ते प्रयान्ति कालभैरवांघ्रिसन्निधिं ध्रुवम्

॥ श्री विश्वनाथाष्टकम् ॥

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥१॥
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम् ।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तम् । वाराणसी० ॥ ॥
भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशाङ्कुशाभयवरप्रदशूलपाणिम् । वाराणसी० ॥३॥
शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम् ।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरम् । वाराणसी० ॥४॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम् ।
दावानलं मरणशोकजराटवीनाम् । वाराणसी० ॥५॥
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीयमानन्दपराजितमप्रमेयम् ।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपम् । वाराणसी० ॥६॥
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम्
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामम् । वाराणसी० ॥७॥
आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशम् । वाराणसी० ॥८॥
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥९॥
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते

श्री काशी विश्वनाथजी का स्वर्ण मन्दिर



धर्म संघ शिक्षा मण्डल

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी